BHARATHI COLLEGE OF EDUCATION

KANDRI, MANDAR, RANCHI

B.Ed

(Course 1-6)

Session:- 2021-2023

Assignment

Guided By:-

Course I	: Prof. Madhu Ranjan
Course II	: Dr. Salma Khatoon
Course III	: Dr. Binita Choudhary
Course IV	: Dr. Ribha Kumari
Course V	: Asst. Prof. Manoj Kumar Gupta
Course VI	: Prof. Vivek Raj Jaiswal

Submitted By:-

Name :- Madhumika Kujur

Class :- B.Ed 1st Year

Roll No :- 10

Session :- 2021-2023

आभार ज्ञापन

शिक्षा मुख्य रूप से द्विपक्षीय प्रक्रिया है जिसमें सीखना और सीखाना महत्वपूर्ण है। बी० एड० कार्यक्रम के अंतर्गत प्रत्येक स्तर पर निर्देशन, परामर्श आदि दोनों क्षेत्रों का महत्वपूर्ण स्थान है।

बी० एड० कार्यक्रम को पूर्ण करने में समस्त व्याख्यातागण का सहयोग रहा । इसमें हमें व्यक्ति में वृद्धि व विकास की जानकारी प्राप्त हुई।

मैं सक्रिय कार्य के लिए सबसे पहले महाविद्यालय भारथी कॉलेज ऑफ एजुकेशन के शैक्षणिक सचिव दीपाली परासर और हमारे प्रभारी प्राचार्य व्याख्याता श्री राकेश कुमार राय ने विशेष योगदान दिया जिसके लिए मैं आप सभी को विशेष आभार एवं कृतज्ञता का भाव व्यक्त करता हूँ ।

मैं अपने पुस्तकालय अध्यक्ष को भी धन्यवाद करना चाहती हूँ जिन्होंने मुझे सक्रीय कार्य से संबंधित पुस्तकों को उपलब्ध कराने में सहायता प्रदान किया।

मैं अपने माता पिता सभी मित्रों को एवं परिजनों को धन्यवाद देती हूँ जिन्होंने प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से मेरे कार्यभार में मुझे सहयोग प्रदान किया ।

धन्यवाद ।

प्रशिक्षु का नाम	:- मधुमिका कुजूर
रोल नं०	:- 10
कक्षा	:- बी० एड० (प्रथम वर्ष)
सत्र	:- 2021-2023

INDEX

S.No	Course		Page No	Remark
1		अभिवृद्धि तथा विकास से आप क्या समझते हैं? अभिवृद्धि तथा विकास के विभिन्न सिद्धांतों की व्याख्या करें?	1-18	
2		शिक्षा से आप क्या समझते हैं? शिक्षा के उद्देश्य तथा उसको प्रभावित करने वाले कारकों की चर्चा करें?	19-37	
3		अधिगम से आप क्या समझते हैं? अधिगम के विभिन्न कारकों का वर्णन करें?	38-52	
4		भाषा किसे कहते हैं? एक शिक्षक परिशिक्षणार्थी पाठ्यक्रम में आवश्यकता एवं महत्व की विवेचना करें?	53-66	
5		शिक्षा दर्शन से क्या तात्पर्य है? शिक्षा और दर्शन के संबंध की विवेचना करें?	67-84	
6		समाज में स्त्रियों की क्या भूमिका है? लिंगिय विभेद को दूर करने के लिए संविधान में क्या उपाय है	85-102	

COURSE

1

CHILDHOOD AND GROWING UP

आभार ज्ञापन

शिक्षा मुख्य रूप से द्विपक्षीय प्रक्रिया है जिसमें सीखना और सीखाना महत्वपूर्ण है। बी० एड० कार्यक्रम के अंतर्गत प्रत्येक स्तर पर निर्देशन, परामर्श आदि दोनों क्षेत्रों का महत्वपूर्ण स्थान है।

बी० एड० कार्यक्रम के अंतर्गत हमें समस्त व्याख्यातागण का सहयोग मिला। इसमें हमें व्यक्ति में वृद्धि व विकास की जानकारी प्राप्त हुई।

मैं सक्रिय कार्य के लिए सबसे पहले महाविद्यालय **भारथी कॉलेज ऑफ एजुकेशन** में **बाल्यावस्था और विकास** के व्याख्यता मधु रंजन के निर्देशन में इस कार्य को पूर्ण किया। जिसके लिए मैं उनके प्रति सहृदय आभारी हूँ।

धन्यवाद।

प्रशिक्षु का नाम	:- मधुमिका कुजूर
रोल नं०	:- 10
कक्षा	:- बी० एड० (प्रथम वर्ष)
सत्र	:- 2021-2023

प्रश्न→ अभिवृद्धि तथा विकास से आप क्या समझते हैं? अभिवृद्धि तथा विकास के विभिन्न सिद्धांतों की व्याख्या करें?

हम सभी जानते हैं कि गर्भ स्थिति से लेकर मृत्युपर्यन्त व्यक्ति में परिवर्तन होते रहते हैं। बालक जन्म लेने के पश्चात शैशवकाल में आता है। इसके बाद बाल्यकाल, किशोरकाल और प्रौढ़ावस्था में प्रवेश करता है। इन सभी अवस्थाओं में परिवर्तन आते हैं जिनका प्रमुख आधार अभिवृद्धि और विकास होता है। शिक्षण के क्षेत्र में सफलता प्राप्त करने के लिए प्रत्येक अध्यापक के लिए आवश्यक है कि वह बालक के विकास के विषय में पूर्ण ज्ञान प्राप्त करें। विकास के अर्थ, अवस्थाएँ व सिद्धान्तों को भली-भाँति समझ लें। इस ज्ञान के आधार पर ही वह बालक में होने वाले परिवर्तनों के अनुसार अपनी शिक्षण प्रणाली को विकसित कर सकता है।

विकास एक बहुमुखी प्रक्रिया है। इसमें बहुत सी बातों का समावेश होता है।

अभिवृद्धि और विकास

- अभिवृद्धि का अर्थ → फ्रैंक के अनुसार
- विकास का अर्थ
  - हरलॉक के अनुसार
  - हॉयलर
  - थॉर्नडाइक
- अभिवृद्धि और विकास की परिभाषाएँ
  - फ्रैंक के अनुसार
  - हरलॉक के अनुसार
  - गैसेल के अनुसार
  - मेरीडिथ के अनुसार
- अभिवृद्धि तथा विकास की प्रकृति
- विकास के कारण
  - परिपक्वता
  - अधिगम या सीखना
- विकास की अवस्थाएँ
  - हरलॉक
  - रॉस
  - सैले
- विकास को प्रभावित करने वाला कारक
  - आनुवंशिक कारक
    - लिंग
    - बुद्धि
  - वातावरण
    - विद्यालय
    - परिवार
    - समाज
- वृद्धि विकास के सिद्धांत
  - निरंतर विकास का सिद्धांत
  - विकास की विभिन्न गति के सिद्धांत
  - विकास क्रम का सिद्धांत
  - विकास दिशा का सिद्धांत
- निष्कर्ष

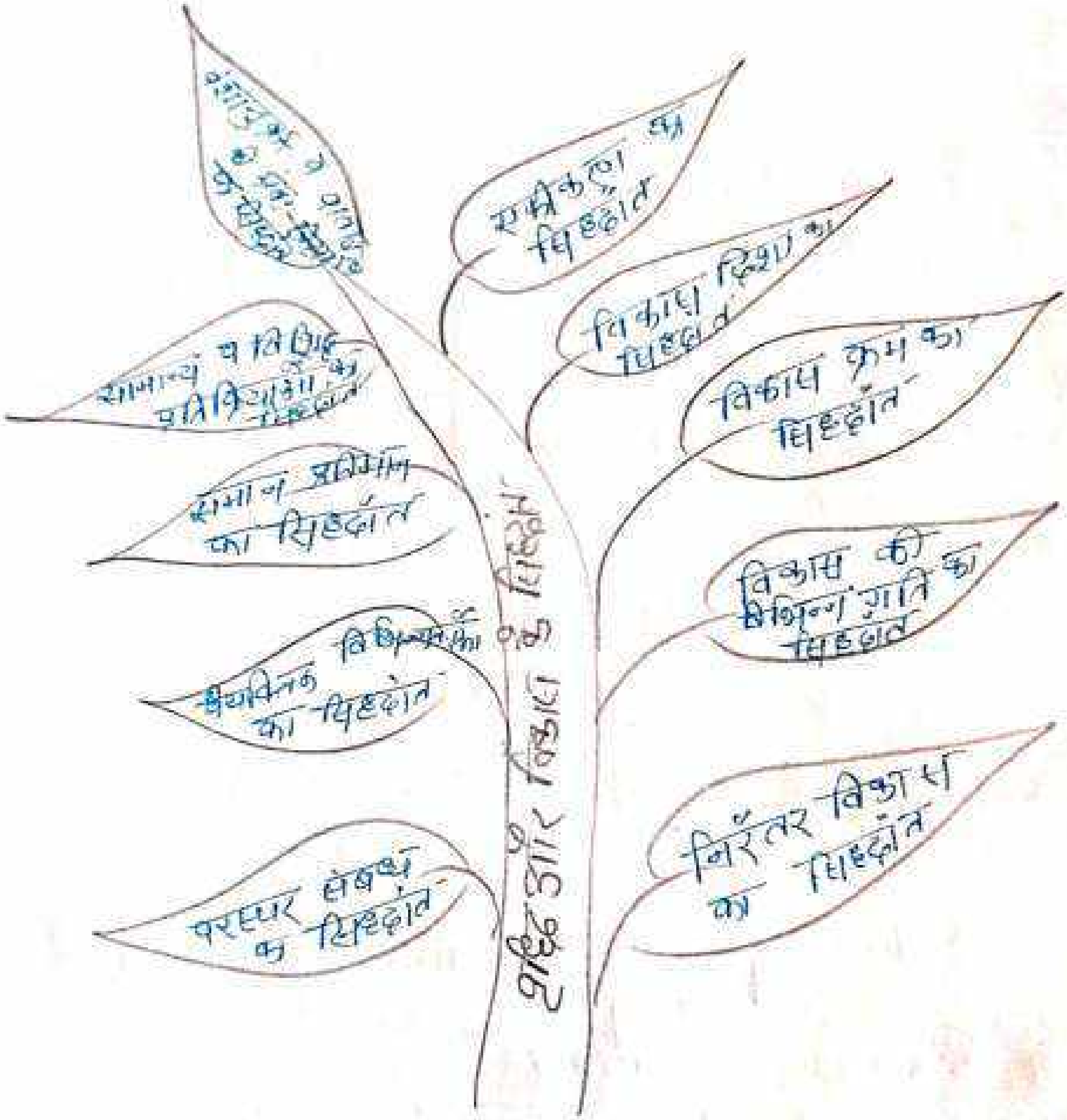
वृद्धि और विकास के सिद्धांत
समानीकरण का सिद्धांत
विकास दिशा का सिद्धांत
विकास क्रम का सिद्धांत
विकास की विभिन्न गति का सिद्धांत
निरंतर विकास का सिद्धांत
सामान्य व विशिष्ट प्रतिक्रियाओं का सिद्धांत
समान प्रतिमान का सिद्धांत
वैयक्तिक विभिन्नताओं का सिद्धांत
परस्पर संबंध का सिद्धांत

अभिवृद्धि का अर्थ

कोशिकाओं की गुणात्मक वृद्धि ही अभिवृद्धि कहलाती है। जैसे - लम्बाई, भार, चौड़ाई आदि की वृद्धि हाथ पैर का बढ़ना आदि अभिवृद्धि कहलायेगी।

- फ्रैंक के अनुसार, "कोशीय गुणात्मक वृद्धि ही अभिवृद्धि है"

सामान्य तौर पर व्यक्ति के स्वभाविक विकास को अभिवृद्धि कहते हैं। गर्भ धारण के समय, भ्रूण बनने से लेकर जन्म लेने तक जो प्रगतिशील परिवर्तन होते हैं तथा प्रौढ़ावस्था तक व्यक्ति में जो भी स्वभाविक परिवर्तन होते हैं, जिन पर शिक्षण अथवा प्रशिक्षण का प्रभाव नहीं पड़ता अभिवृद्धि कहलाते हैं।

मानव अभिवृद्धि की विशेषताओं एवं स्वरूप का अध्ययन प्राय सभी शरीरविज्ञानी जीवशास्त्री, मनोविश्लेषक, मनोचिकित्सक, मनोवैज्ञानिक, समाजशास्त्री तथा बाल चिकित्सक आदि करते हैं।

मानव अभिवृद्धि की प्रकृति के अध्ययन से यह ज्ञात होता है

होता है कि बालक के शरीर और व्यवहार के प्रमुख आकार-प्रकार में किस प्रकार परिवर्तन घटित होता है। शिक्षा का महत्त्वपूर्ण उद्देश्य ही है बालक के व्यक्तित्व में प्रगतिशील परिवर्तन लाना। यह परिवर्तन मानव अभिवृद्धि की प्रकृति के अनुरूप ही लाया जा सकता है।

विकास का अर्थ

सम्पूर्ण आकृति या रूप में परिवर्तन ही 'विकास' है। वास्तव में विकास सम्पूर्ण अभिवृद्धियों का संगठन है। इसके कारण बालक की कार्यक्षमता और कुशलता में प्रगति होती है। उदा० - पैरों की वृद्धि, हाड़ की वृद्धि अभिवृद्धि है किन्तु इनका सम्मिलित रूप 'शारीरिक विकास' कहलाता है। इस विकास से ही शारीरिक क्षमता में परिवर्तन आता है।

अभिवृद्धि के साथ-साथ बालक में विकास भी होता जाता है। विकास जीवन-पर्यन्त क्रमानुसार चलने वाली प्रक्रिया है।

- हरलॉक के अनुसार, "विकास, अभिवृद्धि तक ही सीमित नहीं है। इसकी अपेक्षा इसमें परिपक्वावस्था के लक्ष्य की

और, परिवर्तनों का प्रगतिशील क्रम निहित रहता है। विकास के परिणामस्वरूप व्यक्ति में नई-नई विशेषताएँ और नई-नई योग्यताएँ प्रकट होती हैं।

- 'हरलॉक' के अनुसार विकास की अवस्था का प्रभाव दूसरी अवस्था पर पड़ता रहता है।

- 'टेयलर' के अनुसार विकास एक दिशा की ओर जाने वाला मार्ग है।

बालक का विकास सदा एकीकृत होता है। विकास के अनेक पक्ष होते हैं तथा शारीरिक, सामाजिक, मानसिक व संवेगात्मक आदि प्रत्येक पक्ष में पृथक-पृथक, अंगों एवं शक्तियों का विकास होता है।

विकास एक निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है। किन्तु शैशवकाल में विकास अधिक तीव्र होता है। ज्यों-ज्यों आयु बढ़ती जाती है, विकास की गति मन्द होने लगती है।

वाटसन एवं वार्लड्रुक ने यह निष्कर्ष निकाला है कि प्रारंभिक वर्षों में सभी प्रकार का विकास अधिक तीव्र होता है। शिक्षा की दृष्टि से इस सिद्धांत का निहितार्थ यह हुआ कि शिशुओं की शिक्षा का प्रबंध अधिक

सावधानी भी होना चाहिए।

अभिवृद्धि तथा विकास की परिभाषाएँ

मेरीडिथ के अनुसार - "कुछ लेखक अभिवृद्धि का प्रयोग केवल आकार की वृद्धि के अर्थ में करते हैं और विकास का विभेदीकरण के अर्थ में।"

हरलॉक के अनुसार - "विकास बड़े होने तक ही सीमित नहीं है बल्कि इसमें प्रौढ़ावस्था के लक्ष्य की ओर परिवर्तनों का प्रगतिशील क्रम निहित रहता है। विकास के फलस्वरूप व्यक्ति में नवीन विशेषताएँ तथा नवीन योग्यताएँ प्रकट होती हैं।"

फ्रैंक के अनुसार - "अभिवृद्धि से तात्पर्य कोशिकाओं में होने वाली वृद्धि से होता है, जैसे लम्बाई और भार में वृद्धि, जबकि विकास से तात्पर्य प्राणी में होने वाले सम्पूर्ण परिवर्तनों से होता है।"

गेसेल के अनुसार - "विकास, प्रत्यय से अधिक है। इसे देखा, जाँचा और किसी सीमा तक तीन प्रमुख दिशाओं - शरीर अंग विश्लेषणात्मक, शरीर ज्ञान तथा व्यवहारात्मक, में मापा जा सकता है ...

अभिवृद्धि तथा विकास की प्रकृति

वृद्धि और विकास में अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। अभिवृद्धि मात्रात्मक या परिणामात्मक परिवर्तन की ओर संकेत करती है।

इसका सम्बन्ध सिर्फ आकार व वजन बढ़ने से होता है। आकार बढ़ने से शरीर में बाह्य तथा आन्तरिक दोनों प्रकार के अंगों का आकार बढ़ता है। वृद्धि वर्षायु पर निर्भर करती है। इसके आधार पर बालक की आयु का पता लगाया जा सकता है।

जैसे-जैसे बालक की अभिवृद्धि होती रहती है उसकी विभिन्न क्षमताओं में वृद्धि होती रहती है। वृद्धि एक निश्चित अवस्था तक आकर रुक जाती है।

विकास के कारण

मनोवैज्ञानिकों ने विभिन्न अध्ययनों के बाद विकास के निम्नलिखित कारणों

को चिन्हित किया -

1) परिपक्वता :- "हरलॉक" के अनुसार - परिपक्वता की प्रक्रिया से तात्पर्य व्यक्ति में मौजूद आंतरिक योग्यताओं का विकास या उनका अनावरण है।" परिपक्वता की प्रक्रिया बालक के विकास को जन्म से लेकर तब तक तब तक प्रभावित करती रहती है। जब तक कि उनकी स्नायुतन्त्र पूर्ण रूप से दृढ़ परिपक्व नहीं हो जाता है।

2) अधिगम या सीखना :- सीखना व्यक्ति के अभ्यास और अनुभव का संकेत होती है। व्यक्ति व्यवहार में परिवर्तन एक कार्य को अभ्यास करके या केवल पुनरावृत्ति से सीख कर सही समय पर होता है। अथवा एक ऐसा परिवर्तन एक नैसर्गिक चयन, निर्देशन और प्रयोजनमूलक प्रकार के कार्य प्रशिक्षण से आता है। सीखने की प्रक्रिया निरन्तर चलती रहती है। इसके कारण ही बालक विकास की ओर बढ़ता है।

विकास की अवस्थाएँ

प्रत्येक मनुष्य जन्म से लेकर मृत्यु तक विकास की कई अवस्थाओं से होकर गुजरता है। उसका मानसिक भाषायी, संवेगात्मक, सामाजिक और चारित्रिक विकास निरंतर होता रहता है। यह सब विकास उसके विभिन्न आयु स्तरों पर भिन्न-भिन्न रूप में होता है। इस आयु स्तरों को ही विकास की अवस्थाएँ कहते हैं।

भिन्न-भिन्न मनोवैज्ञानिकों ने मानव विकास की अवस्थाओं को भिन्न-भिन्न मनोवैज्ञानिक ने मानव विकास की अवस्थाओं को भिन्न-भिन्न रूप में वर्गीकृत किया है।

भारत में मनुष्य जीवन को निम्न सात अवस्थाओं में विभाजित करके देखा-समझा जाता है-

I गर्भावस्था - गर्भाधान से जन्म तक
II शैशवावस्था - जन्म से 5 वर्ष तक
III बाल्यावस्था - 5 वर्ष से 12 वर्ष तक
IV किशोरावस्था - 12 वर्ष से 18 वर्ष तक
V युवावस्था - 18 वर्ष से 25 वर्ष तक
VI प्रौढ़ावस्था - 25 वर्ष से 55 वर्ष तक
VII वृद्धावस्था - 55 वर्ष से मृत्यु तक

हरलॉक के अनुसार विकास की अवस्थाएँ :-

I गर्भावस्था — जन्म से पूर्व
II प्रारंभिक शैशवावस्था — जन्म से 14 दिन तक
III उत्तर शैशवावस्था — 14 से 2 वर्ष तक
IV बाल्यावस्था — 2 से 11 वर्ष तक
V प्रारंभिक किशोरावस्था — 11 से 13 वर्ष तक
VI किशोरावस्था — 13 से 17 वर्ष तक
VII उत्तर किशोरावस्था — 17 से 21 वर्ष तक

रॉस के अनुसार विकास की अवस्थाएँ —

I. शैशवावस्था — 1 से 3 वर्ष तक
II प्रारंभिक बाल्यकाल — 3 से 6 वर्ष तक
III उत्तर बाल्यकाल — 6 से 12 वर्ष तक
IV. किशोरावस्था — 12 से 18 वर्ष तक

सैले मानव विकास का अध्ययन केवल तीन अवस्थाओं में करने के पक्ष में हैं —

I. शैशवावस्था — 1 वर्ष से 5 वर्ष तक
II बाल्यावस्था — 5 वर्ष से 12 वर्ष तक
III किशोरावस्था — 12 वर्ष से 18 वर्ष तक

विकास को प्रभावित करने वाले कारक

विकास को प्रभावित करने वाले कारकों या तत्वों को निम्न दो श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है :-

(1) **आनुवांशिक कारक** :- आनुवांशिक कारकों के अंतर्गत जन्म से प्राप्त शारीरिक संरचना, आकार, प्रकार तथा बुद्धि आदि बालकों के विकास का महत्वपूर्ण प्रभाव डालते हैं।

- पीटरसन ने कहा है - "किसी व्यक्ति को माता-पिता के माध्यम से उसके पूर्वजों के गुण प्राप्त होते हैं उसे आनुवांशिकता कहते हैं।"

(i) **लिंग भेद** :- शारीरिक और मानसिक विकास पर लिंग भेद का प्रभाव स्पष्ट दिखाई पड़ता है। लड़कियों का शारीरिक विकास लड़कों की अपेक्षा शीघ्र होता है और वे शीघ्र परिपक्व हो जाती हैं।

(ii) **बुद्धि** :- बालक के विकास को प्रभावित करने वाले कारकों में बुद्धि का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। अनुभव के आधार पर यह पाया गया है कि अधिक बुद्धि वाले बालकों का विकास तीव्र गति से होता है।

2) वातावरण :- आनुवांशिक कारकों के बाद वातावरण से सम्बंधित अनेक कारक व्यक्ति के विकास में सहायक होते हैं। जहाँ तक शारीरिक विकास की बात है, उस पर वातावरण का बहुत कम प्रभाव पड़ता है,

(i) विद्यालय :- बालक के विकास में विद्यालय के वातावरण अध्यापक तथा शिक्षण के साधनों की निर्णायक भूमिका होता है। जिन विद्यालयों में कक्षा - शिक्षण के साथ - साथ पाठ्य-सहगामी क्रियाओं का आयोजन किया जाता है।

(ii) पारिवारिक पृष्ठभूमि :- पारिवारिक वातावरण और परिवार में स्थान , बालक के विकास को काफी प्रभावित करता है। यदि परिवार आर्थिक रूप से सम्पन्न और खुले विचारों वाला है।

iii. समाज और संस्कृति :- विकास पर समाज और संस्कृति का भी प्रभाव पड़ता है। बालक के विकास पर उसके समाज तथा भौतिक एवं अभौतिक दोनों प्रकार की संस्कृतियों का प्रभाव पड़ता है।

अभिवृद्धि व विकास के सिद्धान्त

गैरिसन तथा अन्य के अनुसार – जब बालक, विकास की एक अवस्था से दूसरी में प्रवेश करता है, तब हम उसमें कुछ परिवर्तन देखते हैं। अध्ययनों ने सिद्ध कर दिया है कि ये परिवर्तन निश्चित सिद्धांतों के अनुसार होते हैं। इन्हीं को विकास के सिद्धांत कहा जाता है। हम अधोलिखित पंक्तियों में इनका वर्णन कर रहे हैं–

1.) निरन्तर विकास का सिद्धांत :– इस सिद्धान्त के अनुसार, विकास की प्रक्रिया अविराम गति से निरंतर चलती रहती है। पर यह गति कभी तीव्र और कभी मन्द होती है, उदाहरणार्थ, प्रथम तीन वर्षों में बालक के विकास की प्रक्रिया बहुत तीव्र रहती है। और उसके बाद मन्द पड़ जाती है।

इसी प्रकार शरीर के कुछ भागों का विकास तीव्र गति से और

और कुछ का मन्द गति से होता है, पर विकास की प्रक्रिया चलती अवश्य रहती है, जिसके फलस्वरूप व्यक्ति में कोई आकस्मिक परिवर्तन नहीं होता

- स्किनर के शब्दों में विकास - प्रक्रियाओं की निरन्तरता का सिद्धान्त केवल इस तथ्य पर बल देता है कि व्यक्ति में कोई आकस्मिक परिवर्तन नहीं होता है।"

2.) विकास की विभिन्न गति का सिद्धांत

- डगलस एवं हॉलैण्ड ने इस सिद्धांत का स्पष्टीकरण करते हुए लिखा है- विभिन्न व्यक्तियों की विकास की गति में विभिन्नता होती है। और यह विभिन्नता विकास के सम्पूर्ण काल में यथावत् बनी रहती है।

③ विकास क्रम का सिद्धांत :- इस सिद्धांत के अनुसार

गामक का बालक का गामक और भाषा सम्बन्धि आदि विकास एक निश्चित क्रम में होता है।

ब्राउन, शीरीला, एमली ट्रोमिंग आदि की परीक्षाओं में यह बात सिद्ध कर दी है, उदा० 21 से 36 माह का बालक प्रसन्न कुछ उल्टा, 60 माह का बालक सीधा और 72 माह का फिर उल्टा बनता है।

(4) विकास दिशा का सिद्धांत: इस सिद्धांत के अनुसार बालक का विकास सिर से पैर की दिशा में होता है। उदा० अपने जीवन के प्रथम सप्ताह में बालक केवल अपने सिर को उठा पाता है।

- 3 माह में वह अपने नेत्रों की गति पर नियंत्रण करना सीख जाता है।
- 6 माह में वह अपने हाथों की गतियों पर अधिकार कर लेता है।
- 9 माह में वह सहारा लेकर बैठ जाता है।
- 12 माह में वह बैठकर खिसकता है। और खिसककर चलने लगता है।
- एक वर्ष में वह अपने पैरों में नियंत्रण करता है।

(5) **एकीकरण का सिद्धान्त** :- इस सिद्धांत के अनुसार बालक पहले सम्पूर्ण अंग को और फिर अंग को और फिर अंग के भागों को चलाना सीखता है। उसके बाद वह उन भागों में एकीकरण करना सीखता है।

(6) **परस्पर सम्बन्ध का सिद्धांत** :- इस सिद्धांत के अनुसार बालक के शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक आदि पहलुओं के विकास में परस्पर सम्बन्ध होता है। गैरिसन तथा अन्य का कथन है, शरीर - सम्बन्धी दृष्टिकोण व्यक्ति के विभिन्न अंगों के विकास में सामंजस्य और परस्पर संबंध पर बल देता है।

(7) **वैयक्तिक विभिन्नताओं का सिद्धान्त**

इस सिद्धांत के अनुसार प्रत्येक बालक और बालिका के विकास का अपना स्वयं स्वरूप होता है। इस स्वरूप में वैयक्तिक विभिन्नतायें पायी जाती हैं।

(8) समान प्रतिमान का सिद्धांत :-

इस सिद्धांत का अर्थ को स्पष्ट करते हुए हरलॉक ने लिखा है - प्रत्येक जाति, चाहे वह पशुजाति हो या मानवजाति, अपनी जाति के अनुरूप विकास के प्रतिमान का अनुसरण करती है।

उदा० :- संसार के प्रत्येक भाग में मानव जाति के शिशुओं के विकास का प्रतिमान एक ही है और उसमें किसी प्रकार का अन्तर होना संभव नहीं है।

(9) सामान्य व विशिष्ट प्रतिक्रियाओं का सिद्धांत :-
इस सिद्धांत के अनुसार 'बालक का विकास सामान्य प्रतिक्रियाओं की ओर होता है

उदा० नवजात शिशु अपने शरीर के किसी एक अंग का संचालन करने से पूर्व अपने शरीर का संचालन करता है।

(10) वंशानुक्रम व वातावरण की अंतः क्रिया का सिद्धांत :- इस सिद्धांत के अनुसार बालक का विकास न केवल वंशानुक्रम के कारण और न

वातावरण के कारण, बल्कि दोनों की अन्तः क्रिया के कारण होता है।

- स्किनर के अनुसार "यह सिद्ध किया जा चुका है कि वंशानुक्रम उन सीमाओं को निश्चित करता है। जिनके आगे बालक का विकास नहीं किया जा सकता है।

इस प्रकार से कहा जा सकता है कि विकास में अभिवृद्धि की अवधारणा पूर्ण रूप से जुड़ी हुई है। विकास और वृद्धि दोनों एक दूसरे से जुड़े हुए हैं। विकास शरीर की गुणात्मक परिवर्तन को कहा जाता है। विकास एक निश्चित क्रम में होता है। जो कभी रुकता नहीं है, बल्कि जीवन भर चलता रहता है। विकास की विभिन्न अवस्थाएँ होती हैं। तथा प्रत्येक अवस्था की अपनी अलग विशेषता होती है। इसमें बालक का शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक, व सामाजिक विकास निरन्तर होता रहता है।

COURSE 2

CONTEMPORARY INDIA AND
EDUCATION

आभार ज्ञापन

शिक्षा मुख्य रूप से द्विपक्षीय प्रक्रिया है जिसमें सीखना और सीखाना महत्वपूर्ण है। बी० एड० कार्यक्रम के अंतर्गत प्रत्येक स्तर पर निर्देशन, परामर्श आदि दोनों क्षेत्रों का महत्वपूर्ण स्थान है ।

बी० एड० कार्यक्रम के अंतर्गत हमें समस्त व्याख्यातागण का सहयोग मिला । इसमें हमें व्यक्ति में वृद्धि व विकास की जानकारी प्राप्त हुई ।

मैं सक्रिय कार्य के लिए सबसे पहले महाविद्यालय भारथी कॉलेज ऑफ एजुकेशन में **समकालिन भारत** और शिक्षा के व्याख्यता डॉ० **सलमा खातुन** के निर्देशन में इस कार्य को पूर्ण किया । जिसके लिए मैं उनके प्रति सहृदय अभारी हूँ ।

धन्यवाद ।

प्रशिक्षु का नाम	:- मधुमिका कुजूर
रोल नं०	:- 10
कक्षा	:- बी० एड० (प्रथम वर्ष)
सत्र	:- 2021-2023

प्रश्न शिक्षा से आप क्या समझते हैं? शिक्षा के उद्देश्य तथा इसको प्रभावित करने वाले कारकों की चर्चा करें?

परिचय :- शिक्षा मानव प्रकृति की सर्वोत्तम रचना है जो अपने साथ कुछ जन्मजात शक्तियाँ लेकर पैदा होता है। शिक्षा के द्वारा मानव जीवन जन्मजात शक्तियों का विकास उसके ज्ञान एवं कला कौशल में वृद्धि एवं व्यवहार में परिवर्तन किया जाता है और उसे सभ्य, सुसंस्कृत एवं योग्य नागरिक बनाया जाता है। यह कार्य मानव के जन्म से ही उसके परिवार द्वारा अनौपचारिक रूप से तत्पश्चात विद्यालय भेजकर औपचारिक रूप से प्रारंभ कर दिया जाता है।

विद्यालय के साथ - साथ उसे परिवार एवं समुदाय में भी कुछ न - कुछ सिखाया जाता रहा है। और सीखने - सिखाने का यह क्रम विद्यालय छोड़ने के बाद भी चलता रहता है। और जीवन भर चलता है। अपने वास्तविक अर्थ में किसी समाज में सदैव चलने वाली सीखने सिखाने की यह प्रक्रिया ही शिक्षा है। इस इकाई में आप शिक्षा के विभिन्न अर्थ तथा शाब्दिक संकुचित, व्यापक, विश्लेषणात्मक समग्र एवं व्यापक अर्थ से अवगत हो सकेंगे साथ ही इन अर्थों को परिभाषित करने वाले विभिन्न दृष्टिकोण के बारे में जान सकेंगे।

- अर्थ
  - आधुनिक दृष्टिकोण
    - व्यापक
    - संकुचित
  - शाब्दिक
  - सामान्य
  - वास्तविक
  - दार्शनिक
    - व्यापक
    - संकुचित
- शिक्षा की संकल्पना
- शिक्षा का विश्लेषणात्मक अर्थ
  - शिक्षा एक सामाजिक प्रक्रिया के रूप में
  - शिक्षा " "
  - शिक्षा की द्विध्रुवी
  - शिक्षा की त्रिध्रुवी
  - शिक्षा एक बहुध्रुवी
- शिक्षा के उद्देश्य
  - वैयक्तिक
    1. शारीरिक विकास का उद्देश्य
    2. मानसिक विकास का उद्देश्य
    3. चारित्रिक
    4. व्यक्तित्व के विकास
    5. सांस्कृतिक
    6. आर्थिक
  - सामाजिक
    1. बालक में सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना का उद्देश्य
    2. समाजवादी समाज की स्थापना
    3. सामाजिक बुराइयों का अंत
    4. सामाजिक उद्देश्यों को व्यापक रूप में स्वीकार
  - राष्ट्र संबंधी उद्देश्य
    1. छात्रों में भावनात्मक एकता का विकास
    2. राष्ट्रीय एकता की भावना उत्पन्न करना
    3. गरीबी बेरोजगारी से छुटकारा
    4. राष्ट्र की आवश्यकताओं की पूर्ति का उद्देश्य
- शिक्षा के उद्देश्यों को प्रभावित करने वाले कारक
  - दार्शनिक कारक
  - सांस्कृतिक कारक
  - सामाजिक कारक
  - आर्थिक
  - राजनैतिक
  - मनोवैज्ञानिक
  - पर्यावरणीय
  - नैतिक
  - धार्मिक
  - वैज्ञानिक
  - विश्व के समाज
- निष्कर्ष

शिक्षा का अर्थ

शिक्षा शब्द हिन्दी भाषा का है तथा हिन्दी भाषा की उत्पत्ति संस्कृत भाषा से हुई है। शिक्षा शब्द की उत्पत्ति संस्कृत के दो शब्दों से मानी जाती है। एक है शिक्ष धातु तथा दूसरा 'शास्' धातु

- शिक्ष का अर्थ है - अनुशासन में रखना "नियंत्रण"
- शास् का अर्थ है - अनुशासन में रखना "नियंत्रण में रखना" तथा निर्देश देना

संस्कृत भाषा में एक शब्द और है - विद्या भी संस्कृत के 'विद्' धातु से बना है, जिसका अर्थ 'जानना' और ज्ञान प्राप्त करना। जानने में मुख्य रूप से दो बातों को सम्मिलित किया जाता है -

शिक्षा को हम कई दृष्टिकोण से समझ सकते हैं -

शिक्षा

(i) शाब्दिक दृष्टिकोण (ii) सीमित दृष्टिकोण (iii) व्यापक दृष्टिकोण (iv) वास्तविक दृष्टिकोण (v) दार्शनिक दृष्टिकोण

शाब्दिक दृष्टिकोण :- शाब्दिक दृष्टिकोण के अनुसार शिक्षा को दो भागों में बाँटकर देख सकते हैं -

शाब्दिक दृष्टिकोण

पाश्चात्य दृष्टिकोण — भारतीय दृष्टिकोण

पाश्चात्य दृष्टिकोण :- शिक्षा अंग्रेजी शब्द 'Education' का हिन्दी रूपांतरण है। Education दो शब्दों से मिलकर बना है। 'E' और Duco जहाँ 'E' का अर्थ है "अंदर" से और Duco का अर्थ है 'बाहर निकालना'

भारतीय दृष्टिकोण :- शिक्षा 'शिक्ष' और 'शास्' धातु से बना है। जिसका अर्थ है सीखना और 'सीखाना'

1. सीमित दृष्टिकोण :- संकुचित अर्थ में शिक्षा का अर्थ है, स्कूलीन शिक्षा शिक्षण संस्थानों द्वारा प्राप्त की गई अर्थात दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि बालक जो शिक्षण संस्थानों से सीखता है उसे औपचारिक शिक्षा भी कहते हैं,

3. व्यापक दृष्टिकोण :- व्यापक दृ आधार में शिक्षा आजीवन चलने वाली प्रक्रिया है इसके अंतर्गत औपचारिक एवं अनौपचारिक दोनों प्रकार की शिक्षा को शामिल करते हैं। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि बालक शिक्षण संस्थानों के

अन्य सभी प्रकार के अनुभवों से सिखता है।

शिक्षा को किसी समय स्थान व्यक्ति विशेष या पाठ्यक्रम से नहीं बाँधा जा सकता है बल्कि यह मुक्त प्रक्रिया के रूप में है।

बालक जब जन्म लेता है तो वह असहाय शिशु होता है। उसी अवस्था से ही उसकी सीखने की प्रक्रिया शुरु हो जाती है। उसकी प्रथम सीख उसकी माँ की गोद से प्रारंभ हो जाती है।

अनेक विद्वानों ने शिक्षा के इस रूप को भी परिभाषित करते हुए अपने विचार दिए हैं -

- जे० एस० मैकेन्जी के अनुसार :- "व्यापक दृष्टि से शिक्षा जीवन पर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया है और जीवन के प्रत्येक अनुभव के द्वारा इसका विकास होता है।"
- प्रो० डम्विल के अनुसार - "शिक्षा के व्यापक अर्थ में वे सभी प्रभाव आते हैं जो व्यक्ति को जन्म से लेकर मृत्यु तक प्रभावित करते हैं।"

वास्तविक दृष्टिकोण :- शिक्षा के शाब्दिक संकुचित तथा व्यापक में से किसी एक को श्रेष्ठ बताना ठीक नहीं है। इस प्रकार शिक्षा एक ऐसा

प्रक्रिया है जो व्यक्ति के स्वभाविक गुणों का विकास करता है।

• "टी रेमॉण्ट" शिक्षा के संकुचित तथा व्यापक अर्थ का समन्वय करते हुए भी कहे हैं "शिक्षा मानव जीवन के विकास की वह प्रक्रिया है जो शैशवावस्था से लेकर प्रौढ़ावस्था तक चलती रहती है। अर्थात अपने आपको आवश्यकतानुसार भौतिक सामाजिक तथा आध्यात्मिक वातावरण के अनुरूप बना लेता है।"

दार्शनिक दृष्टिकोण

दार्शनिक दृष्टिकोण को दो भागों में बाँटा गया है।

दार्शनिक दृष्टिकोण
- (i) पाश्चात्य दृष्टिकोण
- (ii) भारतीय दृष्टिकोण

(i) पाश्चात्य दृष्टिकोण के अनुसार

(a) अरस्तू के अनुसार :- "स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मन का निर्माण ही शिक्षा है।"

(b) प्लेटो के अनुसार :- शिक्षा का कार्य मनुष्य के शरीर और आत्मा को वह पूर्णता प्रदान करना है जिसके कि वे योग्य हैं।

(c) जॉन डीवी के अनुसार "शिक्षा व्यक्ति की उन

सब शक्तियों का विकास है जो उसमें अपने पर्यावरण पर नियंत्रण रखने वाली सम्भावनाओं को पूर्ण करने की सामर्थ्य प्रदान करें।

(ii) भारतीय विद्वानों के अनुसार

(अ) महात्मा गाँधी के अनुसार "शिक्षा से मेरा अभिप्राय बालक और मनुष्य के शरीर मन तथा आत्मा के सर्वांगीण एवं सर्वोत्कृष्ट विकास से है।

(ब) स्वामी विवेकानन्द के अनुसार "मनुष्य की अन्तर्निहित पूर्णता को अभिव्यक्त करना ही शिक्षा है।

(स) रवीन्द्रनाथ टैगोर के अनुसार "सर्वोच्च शिक्षा वह है जो हमें केवल सूचनाएँ नहीं देती बल्कि हमारे जीवन और सम्पूर्ण सृष्टि में तादात्म्य स्थापित करती है।

शिक्षा का संकुचित अर्थ

शिक्षा का सबसे प्रचलित रूप ही उसका संकुचित रूप है। जनसाधारण की यह धारणा होती है कि विद्यालय में प्रदान की जाने वाली शिक्षा जिसमें सब कुछ पूर्व निर्धारित होता है, वही शिक्षा है। इसमें पाठ्यक्रम पूर्व निर्धारित होता है, निश्चित शिक्षण विधियाँ होती हैं, पाठ्य-पुस्तकों की निश्चितता और बहुलता होती है और इसमें शिक्षकों का स्थान प्रमुख होता है। यह शिक्षा जीवन के कुछ ही वर्षों तक चलती है।

"अतः यहाँ पुस्तकीय ज्ञान एवं निरर्थक शिक्षा को भी संज्ञा दी जाती है। अनेक विद्वानों ने शिक्षा के संकुचित अर्थ प्रतिपादित करते हुए अपने विचार दिए हैं।

- [illegible] "शिक्षा एक विशेष प्रकार का वातावरण है। जिसका प्रभाव बालक के चिन्तन दृष्टिकोण तथा व्यवहार करने की आदतों पर स्थायी रूप से परिवर्तन के लिए डाला जाता है।
- जे. एस. मैकेन्जी" ने शिक्षा के संकुचित अर्थ को स्पष्ट करते हुए कहा है। "संकुचित अर्थ में शिक्षा का अभिप्राय हमारी शक्तियों के विकास और उन्नति के लिए चेतनापूर्वक किए गए प्रयासों से लिया जाता है।"

मेरे विचार से संकुचित अर्थ में शिक्षा बालक के सम्पूर्ण विकास को करने में असफल या असमर्थ होती है। इस प्रकार की व्याख्या से बालक में व्यवहारिक ज्ञान का अभाव रहता है। वह विषय को रटकर याद तो कर लेता है लेकिन उसमें व्यवहारिक कुशलता नहीं आ पाती है। ज्ञान उसके पास मात्र सूचना बनकर ही रह जाता है।

शिक्षा का विश्लेषणात्मक अर्थ

विभिन्न विद्वानों ने शिक्षा शब्द को विभिन्न प्रकार से विश्लेषित किया है, जो निम्नलिखित हैं।

(i) शिक्षा एक सामाजिक प्रक्रिया के रूप में
(ii) शिक्षा एक गतिशील प्रक्रिया के रूप में
(iii) शिक्षा एक द्विमुखी प्रक्रिया के रूप में
(iv) शिक्षा एक त्रिमुखी प्रक्रिया के रूप में
(v) शिक्षा एक बहुमुखी प्रक्रिया के रूप में

(i) शिक्षा एक सामाजिक प्रक्रिया के रूप में :- विद्वानों एवं अनेक समाजशास्त्रियों का मत है कि

शिक्षा एक सामाजिक प्रक्रिया है, क्योंकि जब दो या दो से अधिक व्यक्तियों के बीच सामाजिक अन्तः क्रिया होता है। तो वह एक दूसरे की भाषा विचार और आचरण से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता है।

ii) शिक्षा एक गतिशील प्रक्रिया के रूप में :- यह संसार ही निरन्तर गतिशील है। तथा मनुष्य के स्वभाव में भी गतिशीलता का गुण विद्यमान है। अतः शिक्षा का अस्थिर होना स्वाभाविक है। शिक्षा सदैव गतिशील रहकर बालक को देश, काल और परिस्थिति के अनुसार प्रगति की ओर अग्रसर करती है।

iii) शिक्षा एक द्विमुखी प्रक्रिया के रूप में :- शिक्षाशास्त्रियों का विचार है कि शिक्षा की प्रक्रिया में एक पक्ष प्रभावितकर्ता तथा दूसरा पक्ष प्रभावित होता है। शिक्षा के दो पक्ष होते हैं। प्रथम जो प्रभावित करता है (शिक्षक) और द्वितीय, वह जो प्रभावित होता है। (शिक्षार्थी)

- जॉन एडम्स के अनुसार "शिक्षा एक द्विमुखी प्रक्रिया है जिसमें एक व्यक्तित्व दूसरे व्यक्तित्व को प्रभावित करता है जिससे उसके व्यवहार में परिवर्तन हो सके।

(iv) शिक्षा एक त्रिमुखी प्रक्रिया के रूप में :- डीवी का विचार है कि शिक्षा की प्रक्रिया में अध्यापक और छात्रों के बीच अंतः क्रिया का कोई न कोई आधार अवश्य होते हैं और वह आधार समाज है क्योंकि बालक का विकास समाज में रहकर ही होता है। शिक्षा के द्वारा निःसंदेह बालक की

जन्मजात शक्तियों का विकास किया जाना चाहिए परंतु हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि बालक का विकास समाज में रहकर ही सम्भव होता है। अतः उन्होंने शिक्षा प्रक्रिया के तीन आधारभूत स्तम्भ बताए हैं।

(i) शिक्षक
(ii) बालक
(iii) पाठ्यक्रम

(4) शिक्षा एक बहुमुखी प्रक्रिया के रूप में :- आधुनिक समय में शिक्षा का स्वरूप काफी बदला हुआ है। अब शिक्षा को केवल विद्यालय और पाठ्यक्रम तक ही सीमित नहीं किया जा सकता है। सामाजिक, आर्थिक, क्रियाकलापों का भी शैक्षिक महत्त्व है। विद्यालय के अतिरिक्त अन्य औपचारिक तथा अनौपचारिक साधनों को भी शिक्षा का साधन माना जाता है।

शिक्षा का उद्देश्य

वैयक्तिक उद्देश्य

(i) शारीरिक विकास का उद्देश्य
(ii) मानसिक / बौद्धिक विकास का उद्देश्य
(iii) चारित्रिक विकास का उद्देश्य
(iv) आंतरिक शक्तियों का विकास
(v) सांस्कृतिक विकास का उद्देश्य
(vi) आर्थिक सक्षमता का विकास

सामाजिक उद्देश्य

(i) बालक में सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना का विकास करना
(ii) समाजवादी समाज की स्थापना करना।
(iii) सामाजिक बुराइयों का अन्त करना।
(iv) सामाजिक उद्देश्य को व्यापक रूप में स्वीकारना

राष्ट्र सेवा उद्देश्य

(i) छात्रों में भावनात्मक एकता लाना
(2) राष्ट्रीय एकता की भावना उत्पन्न करना
(3) गरीबी बेरोजगारी को दूर करना
(4) राष्ट्र की आवश्यकताओं एवं आकांक्षाओं की पूर्ति का उद्देश्य

सामाजिक उद्देश्य
- संकुचित कार्य
- व्यापक कार्य
  - सामाजिक कुशलता
    - आर्थिक कुशलता
    - सहकारात्मक नैतिकता
  - नागरिकता

1) वैयक्तिक उद्देश्य :- शारीरिक विकास शिक्षा का सार्वदेशिक सार्वभौमिक एवं सार्वकालिक उद्देश्य है। शरीर सब धर्मों का साधन है। भौतिक उपलब्धियाँ हों या आध्यात्मिक उपलब्धियाँ, इनकी प्राप्ति शरीर से ही की जाती है।

2) मानसिक / बौद्धिक विकास का उद्देश्य :- बालक का मानसिक विकास करना शिक्षा का प्रमुख दायित्व है। मानसिक दृष्टि से परिपक्व व्यक्ति अपनी राजनीतिक, आर्थिक एवं सामाजिक समस्याओं का समाधान कर सकता है।

आज शिक्षा के क्षेत्र में मानसिक विकास से तात्पर्य बच्चों को विचारों के आदान-प्रदान हेतु भाषा का ज्ञान कराने एवं वस्तु जगत एवं आध्यात्म जगत को जानने के लिए विविध विषयों का ज्ञान कराने, मानसिक शक्तियों स्मृति, निरीक्षण, कल्पना, तर्क, चिंतन, मनन, सामान्यीकरण, निर्णय आदि का विकास करने, उनकी बुद्धि को तर्क आदि की सहायता से सत्य-असत्य में भेद करने में प्रशिक्षण करने, उनमें विवेक शक्ति का विकास करने और उनको मानसिक रोगों से बचाने तथा मानसिक प्रेरकों (अभय, आशा, आत्मविश्वास) को उत्पन्न करने से लिया जाता है।

3) चारित्रिक विकास का उद्देश्य :- बालकों का नैतिक एवं चारित्रिक विकास करना शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य है। प्रत्येक समाज के अपने आचार विचार सम्बन्धी कुछ सिद्धांत और नियम होते हैं इस नियम का पालन करना नैतिकता है। और इन नियमों के पालन हेतु चारित्रिक शक्ति की आवश्यकता होती है।

- हरबर्ट जो एक शिक्षा शास्त्री हैं उनका कहना है कि वे नैतिक चरित्र के निर्माण को ही शिक्षा मानते हैं।

4) अच्छी रुचियों का विकास :- प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री हरबर्ट हैं। उनके अनुसार रुचियाँ ही चरित्र का निर्धारण करती हैं। अतः शिक्षा का एक उद्देश्य बालक के अन्दर अच्छी रुचियों का विकास करना भी होना चाहिए। ताकि वह अपना चारित्रिक उत्थान सुनिश्चित कर सके।

5) सांस्कृतिक विकास का उद्देश्य :- आज हमें भारतीय संस्कृति को सिर्फ जीवित रखने का ही दायित्व नहीं निभाना है बल्कि संस्कृति का विकास भी करना है और उसके प्रति आस्था रखें एवं अपने व्यक्तित्व को उस संस्कृति के अनुकूल ढालें।

6) आर्थिक क्षमता का विकास :- शिक्षा का मुख्य उद्देश्य बालक में आर्थिक सक्षमता का विकास करना भी होना चाहिए जिससे वह अपनी व अपने ऊपर निर्भर व्यक्तियों की आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति कर सके।

शिक्षा का सामाजिक उद्देश्य

शिक्षा के सामाजिक उद्देश्य निम्नलिखित प्रकार हैं :-

(i) बालक में सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना का विकास करना :- बालक समाज का एक अभिन्न अंग है और वह अपनी छोटी से लेकर बड़ी आवश्यकताओं के लिए समाज पर निर्भर करता है। यह प्रत्येक व्यक्ति का उत्तरदायित्व है कि वह समाज में सम्पन्नता लाने का प्रयास करे।

2.) समाजवादी समाज की स्थापना करना :- भारतीय संविधान में यह स्पष्टतः कहा गया है कि भारतवर्ष एक समाजवादी व कल्याणकारी राज्य है, जिसमें प्रत्येक नागरिक की स्वतंत्रता, समानता, भ्रातृत्व एवं सुरक्षा का विशेष महत्व है। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए ऐसी शिक्षा की व्यवस्था रखनी होगी।

3.) सामाजिक बुराइयों का अन्त करना :- भारत में रूढ़िवाद एवं अंधविश्वास के कारण अनेक समस्याएँ उत्पन्न हुई जिनमें प्रमुख है बाल-विवाह, पर्दा प्रथा, विधवा पुनर्विवाह निषेध, स्त्रियों का नीचा स्तर आदि।

अतः उचित शिक्षा के उद्देश्यों द्वारा समाज का पुनर्निर्माण करने की आवश्यकता है। ताकि ये बुराइयाँ समाप्त हो जाए।

4.) सामाजिक उद्देश्य का व्यापक रूप स्वीकारना :- शिक्षा के सामाजिक उद्देश्य से ही समाजवाद का जन्म हुआ। हमें शिक्षा के सामाजिक उद्देश्य को संकुचित अर्थों अर्थात कट्टर राष्ट्र समाजवाद के रूप में न

13

लेकर व्यापक अर्थ अर्थात प्रजातन्त्रात्मक समाजवाद के रूप में स्वीकार करना चाहिए

राष्ट्र सम्बन्धी उद्देश्य

1) छात्रों में भावनात्मक एकता लाना :- यदि हमें राष्ट्र में विनाशकारी प्रवृत्तियों से बचाना चाहते है तो इसके सदस्यों को हमें एकता के सूत्र में बाँधना होगा और एकता के सूत्र में बाँधने का सबसे सशक्त माध्यम शिक्षा है। और शिक्षा ही बालकों के अंदर "मैं" के स्थान पर "हम" की भावना जागृत करती है।

2) राष्ट्रीय एकता की भावना उत्पन्न करना :- राष्ट्र के पूर्ण निर्माण के लिए राष्ट्रीय एकता का होना आवश्यक है। एक की अभाव में राष्ट्र दुर्बल प्रभावहीन हो जाता है। अतः राष्ट्रीय एकता के मार्ग में आने वाली बाधाओं को दूर करने के लिए शिक्षा द्वारा प्रत्येक नागरिक में देश-प्रेम की भावना विकास करना होगा।

शिक्षा के उद्देश्य को प्रभावित करने वाला कारक

1) दार्शनिक कारक :- शिक्षा के उद्देश्य को आवश्यकतानुसार परिवर्तित किया जा रहा है। जैसे बौद्ध काल में भगवान बुद्ध के शिक्षा का प्रचार किया जा रहा है। जो और उसके शिक्षा से सम्राट अशोक और कनिष्क प्रभावित हुए। और उस समय शिक्षा का उद्देश्य

बौद्ध दर्शन को प्रभावित करना था। और हिन्दू समाज में फैली कुरीतियाँ, अंधविश्वास, छुआ-छूत की भावना को दूर करना था। और मध्यकाल में देखा जाए तो शिक्षा का मुख्य उद्देश्य था इस्लाम धर्म का प्रचार करना था और आधुनिक काल में शिक्षा का उद्देश्य देखा जाए तो सभी शिक्षित करना था।

अतः कहा जा सकता है कि जिस काल में जैसे दार्शनिक आए उन्होंने जिस प्रकार का उद्देश्य दिया। उसी का प्रभाव शिक्षा पर पड़ा।

2) सांस्कृतिक कारक :- प्रत्येक समाज का अपना रीति रिवाज तथा संस्कृति होती है लेकिन अभी के दौर में देखा जाए तो अभी के पीढ़ी अपने रीति रिवाज को भूलते जा रहे हैं। अपने संस्कृति को छोड़ते जा रहे हैं इसलिए शिक्षा का मुख्य उद्देश्य होगा कि नई पीढ़ी को अपने पिछले संस्कृति तथा रीति रिवाज और जीवन शैली में ढालना है। और अपनी जीवन शैली के प्रति आस्था रखना और व्यवहार बना के रखना जरूरी हो गया है।

3) सामाजिक कारक :- सामाजिक भी समाज का अपना सामाजिक व्यवस्था होता है। जैसे प्राचीन काल में जाति व्यवस्था का बोलबाला था। समाज को कई वर्णों में बाँटा गया था जैसे - ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र जिसमें ब्राह्मण को समाज में सर्वश्रेष्ठ माना जाता था। और इसलिए शिक्षा प्राप्ति का अधिकार छोटे वर्णों को नहीं थी। वे शिक्षा से वंचित थे। इसलिए शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य कहा कि भेदभाव रहित समाज का निर्माण करना ताकि समाज के सभी लोग शिक्षा प्राप्त कर सकें।

4. आर्थिक कारक :- वर्तमान समय में धन सम्पति का बहुत अधिक महत्व है। शिक्षा का उद्देश्य को प्रभावित करने में आर्थिक कारक का महत्वपूर्ण योगदान है क्योंकि आज के दौर में बड़े-बड़े स्कूलों में अधिक फीसों की मांग होती है जिसके कारण से गरीब लोग अपने बच्चों का नामांकरण नही करा पाते हैं और उनका बच्चा शिक्षा से वंचित हो जाता है। और वर्तमान समय में वैश्वीकरण बढ़ती हुई प्रवृतियों ने आर्थिक चिंताए बढ़ा दी है। इससे प्रभावित होकर अब शिक्षा का मुख्य उद्देश्य नौकरी और व्यवसाय की शिक्षा देना रह गया है।

5) राजनीतिक कारक :- किसी भी देश या समाज के विकास में उस देश का राजनीतिक स्थिति का बहुत बड़ा योगदान रहता है यदि समाज का का शासन तानाशाही रहेगी तो निश्चित ही उस समाज का शिक्षा उद्देश्य तानाशाही प्रवृति होगी। इसलिए शिक्षा के माध्यम से ऐसे समाज का निर्माण करना है जिससे की व्यक्ति के सर्वांगिन विकास करना है। और यह तभी संभव होगी जब समाज के लोगो में राजनीतिक जागरूकता आएगी। वे अपना अधिकार और कर्तव्य को सही ढंग से समझेंगे और समाज के विकास में अपना सम्पूर्ण योगदान देंगे।

6) पर्यावरणीय कारक :- अगर हम पर्यावरण का अध्ययन करें तो देखते हैं कि जंगल कट रहे हैं। बड़े-बड़े कारखाना बनाया जा रहा है। जितने भी गंदगी है उसे नदियों, तालाबों में फेका जा रहा है और इसके कारण से जल और वायु काफी दूषित होते जा रहे हैं। इसलिए शिक्षा के माध्यम से इन सभी दुष्प्रभावों को रोके जाए और पर्यावरण को संतुलन बनाया जा सके। और इसलिए आज के शिक्षा में पर्यावरण शिक्षा को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है।

ताकि बच्चे अपने जीवन में पर्यावरण के महत्व को समझ सके। और पर्यावरण संरक्षण का ज्ञान प्राप्त करके पर्यावरण को सुरक्षित रखे।

ङ) नैतिक कारक :- शिक्षा के उद्देश्य को प्रभावित करने में नैतिक कारक महत्वपूर्ण योगदान है क्योंकि बालक के मन में पाप-पुण्य, घृणा आदि उत्पन्न हो रही है तो बालक को नैतिक शिक्षा देकर ही उनका मन में प्रेम की भावना उत्पन्न किया जा सकता है।

च) धार्मिक कारक :- शिक्षा के उद्देश्य को प्रभावित करने में धार्मिक कारक का महत्वपूर्ण योगदान है जिस समाज में धार्मिक विचारधारा जिस प्रकार से होगा, वहाँ का शिक्षा व्यवस्था भी उसी के अनुरूप होगी। कट्टर धार्मिक समाज अपने धर्म को हीनता की दृष्टि से देखते हैं। और अपना धर्म का प्रचार-प्रसार शिक्षा शिक्षा के माध्यम से ही करते हैं और शिक्षा का उद्देश्य एवं पाठ्यक्रमों का निर्धारण भी धार्मिक आदर्शों के अनुरूप किया जाता है और धर्मनिरपेक्ष समाज में धर्म का शिक्षा देना ही प्रमुख उद्देश्य है

छ) वैज्ञानिक तथा तकनीकी कारक :- आज के दौर में देखा जाए तो विज्ञान एवं तकनीकी का बहुत अधिक विकास हुआ है। और होते ही जा रही है। इसलिए समय के साथ-साथ समाज तथा मनुष्य की आवश्यकताएँ भी बढ़ रही हैं। तो इनके मांगों एवं जरूरतों को पूरा करने के लिए शिक्षा के उद्देश्य में परिवर्तन करना जरूरी है और शिक्षा में वैज्ञानिक सोच के माध्यम से पुरानी धारणाओं को सुधारा जा सके। और तकनीकी के प्रयोग से जीवन आसान बनाया जा सके। विभिन्न क्षेत्रों में नए-नए आविष्कार किए जा सकते हैं। और कम से कम समय में अधिक उत्पादन किया जा सकता है

शिक्षकों के अभाव :- शिक्षा को प्रभावित करने में शिक्षकों के अभाव का महत्वपूर्ण योगदान है। क्योंकि यदि कोई विद्यालय में शिक्षकों की उपस्थिति बहुत ही कम रहेगी या फिर ना के बराबर होगी तो विद्यार्थी का ज्ञान सीमित रहेगी उन्हें बहुत कुछ ज्ञान प्राप्त नहीं होगें जो समाज के विकास के लिए महत्वपूर्ण है। और शिक्षक ही ऐसे गुरु है। जो अपने विद्यार्थी को सही राह पर चलना [illegible] सीखाते है।

(2) परिवार का वातावरण :- बच्चा का प्रथम गुरु उनके माता पिता होते है। बच्चों के शिक्षा पर घर परिवार के वातावरण का गहरा प्रभाव पड़ता है यदि माता पिता समझदार है तो वे अपने बच्चों को शिक्षित कराना जरुरी समझेगें और बच्चा जब जन्म लेता है तो वह अपने परिवार से ही सीखना शुरु करता है। और यदि शिक्षित परिवार है तो वह अपने आस -पड़ोस के लोगों को भी शिक्षा ग्रहण करने के लिए प्रेरित करेगा। ताकि समाज शिक्षित हो सके। इसलिए कहा जाता है। एक परिवार से समाज बनता है और समाज से देश। यदि समाज शिक्षित होगा तो हमारा देश विकास की ओर बढ़ेगा।

(3) अधिगम तथा पाठ्य सामग्री का प्रभाव :- शिक्षा के उद्देश्य को प्रभावित करने में अधिगम तथा पाठ्य सामग्री का प्रभाव का महत्वपूर्ण स्थान है। अधिगम व्यक्ति जन्म से मृत्यु तक मे मनुष्य जो भी सीखता है और अपने व्यवहारों में परिवर्तन करता है और अधिगम से ही विकास की प्रक्रिया शुरु होती है और मनुष्य सीखकर ही अपना उद्देश्य को प्राप्त करता है। विद्यार्थी में पाठ्य सामग्रीयों का अधिक प्रभाव पड़ता है शिक्षक भिन्न - भिन्न सामग्रीयों का प्रयोग करता है वह शिक्षण सामग्री या सहायक सामग्री

कहलाता है और पाठ्यसामग्री का उपयोग न कर यदि शिक्षक अध्ययन करते हैं तो विद्यार्थियों का रूचि और भी अधिक बढ़ जाता है।

निष्कर्ष :- इस तरह से कहा जा सकता है कि शिक्षा मानव प्रकृति की सर्वोत्तम रचना है जो अपने साथ कुछ जन्मजात शक्तियाँ लेकर पैदा होता है। शिक्षा की उत्पत्ति संस्कृत के दो शब्दों से मानी जाती है। एक है शिक्ष धातु तथा साक्ष धातु से बना है। और शिक्षा का परिभाषा भी अलग-अलग विद्वानों ने अलग-अलग तरीका से दिया है जैसे- मनुष्य की अन्तर्निहित पूर्णता को अभिव्यक्त करना ही शिक्षा है।

COURSE 3

LEARNING AND TEACHING

<u>आभार ज्ञापन</u>

शिक्षा मुख्य रूप से द्विपक्षीय प्रक्रिया है जिसमें सीखना और सीखाना महत्वपूर्ण है। बी॰ एड॰ कार्यक्रम के अंतर्गत प्रत्येक स्तर पर निर्देशन, परामर्श आदि दोनों क्षेत्रों का महत्वपूर्ण स्थान है ।

बी॰ एड॰ कार्यक्रम के अंतर्गत हमें समस्त व्याख्यातागण का सहयोग मिला । इससे हमें व्यक्ति में वृद्धि व विकास की जानकारी प्राप्त हुई ।

मैं सक्रिय कार्य के लिए सबसे पहले महाविद्यालय **भारती कॉलेज ऑफ एजुकेशन** में **अधिगम एवं शिक्षण** के व्याख्याता **डॉ॰ बिनीता चौधरी** के निर्देशन में इस कार्य को पूर्ण किया । जिसके लिए मैं उनके प्रति सहृदय आभारी हूँ ।

धन्यवाद ।

प्रशिक्षु का नाम	:- मधुमिका कुजूर
रोल नं॰	:- 10
कक्षा	:- बी॰ एड॰ (प्रथम वर्ष)
सत्र	:- 2021-2023

अधिगम से आप क्या समझते हैं। अधिगम के विभिन्न कारकों का वर्णन करें?

सीखना या अधिगम एक बहुत ही व्यापक एवं महत्वपूर्ण शब्द है। मानव के प्रत्येक क्षेत्र में सीखना जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त तक पाया जाता है। दैनिक जीवन में सीखने के अनेक उदाहरण दिए जा सकते हैं। सीखना मनुष्य की एक जन्मजात प्रकृति है। प्रतिदिन प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन में नए अनुभवों को एकत्र करता है ये नवीन अनुभव व्यक्ति के व्यवहार में वृद्धि तथा संशोधन करते हैं। इसलिए यह अनुभव तथा इनका उपयोग ही सीखना या अधिगम करना कहलाता है।

सीखना एक सतत् प्रक्रिया है। यह मनुष्य एवं किसी भी प्राणी की जन्मजात प्रवृति है। मनुष्य जन्म लेते ही सीखना प्रारंभ कर देता है। सीखने के कारण उसमें बहुत कुछ परिवर्तन दिखाई देने लगते हैं। जैसे वह क्या, कौन, कैसे प्रश्न पूछने लगते हैं। सीखने के कई उदा० है जैसे :- बालक किसी जलती वस्तु को छूने का प्रयास करता है और छूने के बाद अनुभूति से वह यह निष्कर्ष निकालता है कि जलती हुई वस्तु को छूना नहीं चाहिए।

दूसरा उदाहरण — यदि बच्चा साईकिल नहीं चलाना जानता है तो वह बार-बार प्रयास

प्राप्त करता है और अंततः वह सीख जाता है साइकिल चलाना।

मनुष्य अपने जीवन के प्रारंभ से लेकर अंत तक कुछ न कुछ सीखता रहता है। प्रत्येक व्यक्ति अपने साथ कुछ आनुवंशिक विशेषताएँ लेकर जन्म लेता है। इन विशेषताओं में बुद्धि एक ऐसी विशेषता है जो उसे अपने चारों ओर फैले वातावरण के साथ अंतः क्रियाएँ करते हुए उसकी समस्त क्रियाएँ और व्यवहारों में परिवर्तन करने की शक्ति प्रदान करती है।

अधिगम का अर्थ

अधिगम या सीखना एक बहुत ही सामान्य और आम प्रचलित प्रक्रिया है। जन्म के तुरंत बाद से ही व्यक्ति सीखना प्रारंभ कर देता है। और फिर जीवनपर्यन्त कुछ ना कुछ सीखता ही रहता है।

सामान्य अर्थ में 'सीखना' व्यवहार में परिवर्तन को कहा जाता है परंतु सभी तरह के व्यवहारों में हुए परिवर्तन को सीखना या अधिगम नहीं कहा जा सकता।

सीखने का सामान्य अर्थ होता है विभिन्न विषयों का

ज्ञान प्राप्त करना और विभिन्न क्रियाओं का प्रशिक्षण प्राप्त करना।

लेकिन मनोविज्ञान में इसे कुछ भिन्न प्रकार से परिभाषित एवं स्पष्ट किया गया है।

मनोविज्ञान में सीखना के दो अर्थ

प्रक्रिया के अर्थ के रूप में

- सीखने का अर्थ उस प्रक्रिया के रूप में लिया जाता है जिसके द्वारा नए-नए विषयों एवं क्रियाओं का ज्ञान प्राप्त करता है।

परिणाम के अर्थ के रूप में

- नए नए विषय एवं क्रियाओं के ज्ञान के फलस्वरूप व्यक्ति के व्यवहार में होने वाले परिवर्तन होता है।

- मनोवैज्ञानिक व्यक्ति के व्यवहार में होने वाले परिवर्तन को सीखना कहते हैं

अधिगम की प्रकृति

- सीखना एक प्रक्रिया है। सीखने के फलस्वरूप व्यक्ति के व्यवहार में परिवर्तन आता है।

- अधिगम व्यवहार का संगठन है।
- अधिगम अभ्यास तथा अनुभव पर निर्भर करता है।
- सीखना सहज क्रिया नहीं है।
- रुचि, निपुणता: जीवन भर चलती सीखने की क्रिया की उपज है।

अधिगम की परिभाषा

- स्किनर के अनुसार: सीखना व्यवहार में उत्तरोत्तर सामंजस्य की प्रक्रिया है।
- वुडवर्थ के अनुसार:- नवीन ज्ञान और नवीन प्रतिक्रियाओं को प्राप्त करने की प्रक्रिया सीखने की प्रक्रिया है।
- गेट्स व अन्य के अनुसार:- अनुभव और प्रशिक्षण द्वारा व्यवहार में परिवर्तन ही अधिगम या सीखना है।
- गैरी के अनुसार:- अभ्यास अथवा प्रशिक्षण के प्रक्रि

अधिगम

- अधिगम का अर्थ
- मनोविज्ञान में अधिगम का ही अर्थ
  - व्यवहार परिवर्तन से अर्थ
  - व्यक्ति परिवर्तन से अर्थ
- अधिगम की परिभाषा
  - विकास
  - गुणवत्ता
  - [illegible]
  - [illegible]
- अधिगम की प्रकृति
- अधिगम की विशेषताएँ
- अधिगम के प्रभावित करने वाले कारक
  - शिक्षार्थी से संबंधित कारक
    - शारीरिक स्वास्थ्य
    - मानसिक स्वास्थ्य
    - बुद्धि
    - सीखने की इच्छा
    - परिपक्वता
  - अध्यापक से संबंधित कारक
    - अध्यापक से संबंधित ज्ञान
    - शिक्षण विधि
    - सिखाने की इच्छा
    - विषय का ज्ञान
  - वातावरण से संबंधित कारक
    - भौतिक वातावरण
    - पारिवारिक वातावरण
    - सामाजिक एवं सांस्कृतिक वातावरण

अधिगम की विशेषताएँ

- सीखना परिवर्तन है।
  व्यक्ति अपने और दूसरों के अनुभवों से सीखकर अपने व्यवहार में परिवर्तन करता है।
- सीखना विकास है।
- सीखना उद्देश्यपूर्ण है।
- सीखना विवेकपूर्ण है।
- सीखना खोज करना है।

- सीखना विकास है:- व्यक्ति अपने दैनिक क्रियाओं और अनुभवों द्वारा कुछ न कुछ सीखता है और उससे उसका शारीरिक और मानसिक विकास होता है।

- सीखना उद्देश्यपूर्ण है सीखना उद्देश्यपूर्ण होता है। उद्देश्य जितना अधिक प्रबल होता है। सीखने की क्रिया उतनी ही अधिक तीव्र होती है।

- सीखना विवेकपूर्ण है। :- सीखना यांत्रिक कार्य के बजाय विवेकपूर्ण कार्य है।

अधिगम के विभिन्न कारक

अधिगम की प्रक्रिया अनेक कारकों से प्रभावित हो सकती है। अधिगम को प्रभावित करने वाले कुछ प्रमुख कारक निम्नलिखित है —

1.) **शारीरिक स्वास्थ्य** :- अधिकांश यही पाया जाता है कि जो बालक शारीरिक रूप से स्वस्थ होते हैं, वे जल्दी सीखते हैं और जल्दी अनुक्रिया करते हैं। शारीरिक रूप से अस्वास्थ्य बालक बालक कम कक्षा में शिक्षण के समय अपना ध्यान केन्द्रित नहीं कर पाते, कक्षा कार्य और गृह कार्य में रूचि नहीं लेते हैं।

2.) **मानसिक स्वास्थ्य** :- मन के अस्वास्थ्य होने पर कुछ भी करने या सीखने में शीघ्र ही थकान और अरूचि उत्पन्न हो जाती है, जिससे सीखने की प्रक्रिया रूक या शी शिथिल हो जाती है।

3.) **बुद्धि** :- सीखना, बहुत कुछ सीखने वाले की बौद्धिक क्षमता पर निर्भर करता है। तीव्र बुद्धि वाले बालक कम बुद्धि वाले बालकों की अपेक्षा शीघ्र सीख लेते हैं। विचार, कल्पना, तर्क, चिन्तन निर्णय शक्ति सभी बुद्धि से सम्बंधित

सम्बन्धित है और अधिगम में इनकी विशेष भूमिका होती है।

4) सीखने की इच्छा :- यदि विद्यार्थी में सीखने की इच्छा है तो नवीन ज्ञान उसे सरलता से सिखाया जा सकता है। यदि विद्यार्थी सीखने के लिए तत्पर नहीं है तो अध्यापक के सम्मुख बहुत गम्भीर समस्या उत्पन्न हो जाती है।

5) परिपक्वता :- अधिगम पर परिपक्वता का काफी प्रभाव पड़ता है। शारीरिक और मानसिक दृष्टि से परिपक्व विद्यार्थी नयी विषय सामग्री को सीखने के लिए सदैव तत्पर एवं उत्सुक रहते हैं।

अध्यापक से सम्बन्धित कारक

1) अध्यापक का व्यवहार :- अधिगम प्रक्रिया में अध्यापक का महत्वपूर्ण स्थान होता है। अध्यापक के आचार - विचार और व्यवहार का बालकों पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है। विभिन्न शिक्षाशास्त्रियों ने अध्यापक को एक पथ - प्रदर्शक, माली तथा कलाकार की संज्ञा दी है।

सम्बन्धित है और अधिगम में इनकी विशेष भूमिका होती है।

4.) सीखने की इच्छा :- यदि विद्यार्थी में सीखने की इच्छा है तो नवीन ज्ञान सरलता से सिखाया जा सकता है। यदि विद्यार्थी सीखने के लिए तत्पर नहीं है तो अध्यापक के सम्मुख बहुत गम्भीर समस्या उत्पन्न हो जाती है।

5.) परिपक्वता :- अधिगम पर परिपक्वता का काफी प्रभाव पड़ता है। शारीरिक और मानसिक दृष्टि से परिपक्व विद्यार्थी नयी विषय सामग्री को सीखने के लिए सदैव तत्पर एवं उत्सुक रहते हैं।

अध्यापक से सम्बन्धित कारक

1.) अध्यापक का व्यवहार :- अधिगम प्रक्रिया में अध्यापक का महत्वपूर्ण स्थान होता है। अध्यापक के आचार, विचार और व्यवहार का बालकों पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है। विभिन्न शिक्षाशास्त्रियों ने अध्यापक को एक पथ-प्रदर्शक, माली तथा कलाकार की संज्ञा दी है।

2) शिक्षण विधि :- शिक्षण विधि का सीधा सम्बन्ध अधिगम प्रक्रिया से है। सभी बालक एक ही विधि से नहीं सीखते हैं। शिक्षण विधि जितनी अधिक प्रभावशाली तथा वैज्ञानिक होगी। उतनी ही सीखने के लिए लाभदायक सिद्ध होगी। करके सीखना, निरीक्षण द्वारा सीखना, प्रयोग द्वारा सीखना, खेल विधि आदि का अपना अलग-अलग महत्व है।

3) सीखने की इच्छा :- जिन अध्यापकों में सीखने की इच्छा होती है। वही सफलतापूर्वक बालकों को सिखा पाते हैं। इच्छा न रखने वाले व्यक्ति सिखाने के लिए विविध प्रयास नहीं करते। वे विद्यार्थियों में सीखने की रुचि और जिज्ञासा जाग्रत नहीं कर सकते।

4) विषय का ज्ञान :- अध्यापक का किसी विषय का अनुभव तथा योग्यता आदि सीखने पर प्रत्यक्ष रूप से प्रभाव डालते हैं। यदि अध्यापकों को अपने विषय का ज्ञान नहीं है तो वे विद्यार्थी को सीखने के लिए उत्साहित नहीं कर सकेंगे। यदि अध्यापक को अपने विषय का पूर्ण ज्ञान है तो वह आत्मविश्वास के साथ विद्यार्थियों

को नया ज्ञान सीखने के लिए प्रेरित कर सकता है।

विषय-वस्तु से सम्बंधित कारक

1) विषय-वस्तु की प्रकृति :- विषय वस्तु का स्वरूप भी अधिगम प्रक्रिया को प्रभावित करते हैं। कठिन, उबाऊ एवं अरुचिकर विषय-वस्तु की अपेक्षा सरल एवं रोचक विषय-वस्तु जल्दी सीख ली जाती है। अतः विषय-वस्तु का प्रकृति बालकों की मानसिक योग्यता एवं परिपक्वता के अनुकूल होनी चाहिए।

2) विभिन्न विषयों में कठिनाई स्तर :- विभिन्न विषयों में कठिनाई स्तर भिन्न होता है। एक विषय में बच्चा बहुत अच्छा सीखता है। जबकि किसी अन्य विषय में उसके सीखने की गति बहुत धीमी हो सकती है।

3) जीवन से संबंधित उदाहरण :- विषय वस्तु में यदि उदाहरण ऐसे हैं जो बालक के जीवन से सम्बंधित हैं। बालक उनसे भली भाँति परिचित होते हैं उन्हें याद करने में सरलता होती है और वे अधिक समय

याद रहते हैं।

4) पूर्व अधिगम :- बालक किसी विषय को कितनी अच्छी तरह से सीखता है यह इस बात पर निर्भर करता है कि वह पहले क्या सीख चुका है। नवीन अधिगम की प्रक्रिया शून्य से प्रारंभ नहीं होती है बल्कि बालक द्वारा पूर्व अर्जित ज्ञान से प्रारंभ होती है। इसलिए बालक का ज्ञान की आधारशिला जितनी सुदृढ़ तथा व्यापक होती है, उसके ज्ञान प्राप्त करने की प्रक्रिया उतनी ही अधिक सुचारु ढंग से चलती है।

विषय-वस्तु से सम्बन्धित कारकों में अधिगम अनुभवों का आयोजन, विषय वस्तु का आकार, विषय वस्तु को प्रस्तुत करने का क्रम, भाषा, विषय-वस्तु की उद्देश्यपूर्णता आदि भी अधिगम को प्रभावित करते हैं।

वातावरण से सम्बन्धित कारक

1) भौतिक वातावरण :- अधिगम के लिए अनुकूल वातावरण का होना आवश्यक

है। प्रतिकूल परिस्थितियों में सीखने की प्रक्रिया ठीक प्रकार से सम्पन्न नहीं हो सकती है। पढ़ने के लिए उचित भौतिक वातावरण, जैसे- स्वच्छ वायु एवं प्रकाश, सफाई तथा बैठने आदि की व्यवस्था भी सीखने पर प्रभाव डालती है।

(2) पारिवारिक वातावरण :- बालक के सीखने में उनके परिवार की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। जिन परिवारों में शांति और सौहार्द का वातावरण होता है, बालक शीघ्र सीखने में सक्षम होते हैं। कलहपूर्ण वातावरण अधिगम में बाधक होता है।

(3) सामाजिक एवं संवेगात्मक वातावरण :- सीखने के समय जिस जिस प्रकार का सामाजिक एवं संवेगात्मक वातावरण शिक्षण-अधिगम कार्य को ठीक प्रकार से सम्पन्न करने के लिए कक्षा, विद्यालय तथा अन्य सीखने की परिस्थितियों में प्राप्त होगा उतनी ही अच्छी आपसी सम्बन्धों में मधुरता पाई जाती है तथा अन्य प्रक्रिया होने के अवसर ज्यादा प्राप्त होते हैं, शिक्षण प्रक्रिया की सफलता की आशा वहाँ उतनी ही अधिक होती है।

4) उचित सामग्री और सुविधाएँ :- जब बालकों को उपयुक्त अध्ययन सामग्री और सुविधाएँ प्राप्त होती हैं तो आशाजनक सफलता प्राप्त होती है। इसके विपरीत वे विद्यार्थी, जिन्हें सीखने में सहायक आवश्यक साज-सज्जा, अधिक सामग्री और सुविधाएँ (पाठ्य-पुस्तक, लिखने-पढ़ने की अन्य सामग्री, पुस्तकालय, प्रयोगशाला सम्बन्धी सुविधाएँ, गृहकार्य करने के लिए आवश्यक समय एवं सुविधाएँ आदि) नहीं प्राप्त होती, वे पिछड़ जाते हैं।

अनुदेशन से सम्बन्धित कारक

1) अभ्यास :- सीखने की क्रिया के ऊपर अभ्यास का काफी प्रभाव पड़ता है। किसी कार्य को बार-बार करने से कार्य की गति बढ़ती है तथा त्रुटियाँ कम हो जाती हैं। अभ्यास द्वारा सीखा हुआ ज्ञान स्थायी होता है।

2) अधिगम विधि :- अध्यापक द्वारा अपनाई गई अधिगम विधि का प्रभाव विद्यार्थी के अधिगम पर पड़ता है। किसी प्रकरण को पढ़ने की एक विधि से सभी बालक प्रभावित नहीं होते हैं यदि कोई अध्यापक अपने विषय को इतने के साथ अवैज्ञानिक और अमनोवैज्ञानिक तरीके से

बालकों को पढ़ाता है तो बालक इसमें रूचि नहीं लेते है। मगर जो अध्यापक बालकों की रूचि योग्यता और आवश्यकता के अनुरूप अधिगम विधि का चुनाव करते हैं, बालक उनकी कक्षा में उत्साहित रहते हैं और सीखने में रूचि लेते है। छोटी बड़ी कक्षाओं में श्रव्य - दृश्य साधनों का प्रयोग करके बालकों की अधिगम में रूचि पैदा की जा सकती है।

3.) परिणाम का ज्ञान :- सीखने के दौरान यदि समय - समय पर सीखने की प्रगति का ज्ञान होता रहता है जिससे वह उन्हें सुधार लेता है। अधिगम के परिणाम का ज्ञान पुनर्बलन

4.) नवीन ज्ञान को पूर्व ज्ञान से सम्बन्धित करना :- नए ज्ञान को पूर्व ज्ञान से सम्बन्धित कर पढ़ाने पर बालक शीघ्रता से सीखता है।

उपर्युक्त सभी कारक सामुहिक रूप से बालक के सीखने से प्रभावित करते है। अतः उन सम्पूर्ण परिस्थितियों का होना आवश्यक है जिसमें उपर्युक्त सभी कारक उपस्थित हो।

निष्कर्ष :- इस तरह से कहा जा सकता है कि सीखना मनुष्य की जन्मजात प्रकृति है। और सीखना एक सतत प्रक्रिया है। जिसमें मनुष्य अपने जीवन के नए नए अनुभवों को जमा करता है और यही नवीन अनुभव व्यक्ति के व्यवहार में वृद्धि करता है। सीखने के कारण ही बहुत से परिवर्तन दिखाई देने को मिलता है और सीखने के बहुत से उदाहरण है जैसे - जलती हुई वस्तु को नहीं छूना चाहिए क्योंकि वो काफी खतरनाक होता है व्यक्ति का हाथ जल भी सकता है

अधिगम के बहुत से विशेषता भी देखने को मिलता है। और अधिगम का परिभाषा है जिसमें अलग-अलग परिभाषा दिया गया है जैसे - स्किनर के अनुसार 'सीखना उत्तरोत्तर सामंजस्य की प्रक्रिया है। इसके विभिन्न कारक भी हैं और

इस प्रोजेक्ट को पूरा करने में हमने इंटरनेट तथा अलग-अलग लेखक के पुस्तक का प्रयोग किया है।

COURSE 4

LANGUAGE ACROSS THE CURRICULUM (½)

आभार ज्ञापन

शिक्षा मुख्य रूप से द्विपक्षीय प्रक्रिया है जिसमें सीखना और सीखाना महत्वपूर्ण है। बी० एड० कार्यक्रम के अंतर्गत प्रत्येक स्तर पर निर्देशन, परामर्श आदि दोनों क्षेत्रों का महत्वपूर्ण स्थान है ।

बी० एड० कार्यक्रम के अंतर्गत हमें समस्त व्याख्यातागण का सहयोग मिला । इसमें हमें व्यक्ति में वृद्धि व विकास की जानकारी प्राप्त हुई ।

मैं सक्रिय कार्य के लिए सबसे पहले महाविद्यालय **भारथी कॉलेज ऑफ एजुकेशन** में **पाठ्यक्रम में भाषा** के व्याख्यता **डॉ० रिभा कुमारी** के निर्देशन में इस कार्य को पूर्ण किया । जिसके लिए मैं उनके प्रति सहृदय आभारी हूँ ।

धन्यवाद ।

प्रशिक्षु का नाम	:- मधुमिका कुजूर
रोल नं०	:- 10
कक्षा	:- बी० एड० (प्रथम वर्ष)
सत्र	:- 2021-2023

प्रश्न- भाषा किसे कहते हैं? एक शिक्षक प्रशिक्षणार्थी पाठ्यक्रम में आवश्यकता एवं महत्व की विवेचना करें?

परिचय : भाषा एक सामाजिक सम्पत्ति है जिसका विकास समाज में होता है। भाषा को अर्जित किया जाता है। अतः यह पैतृक सम्पत्ति नहीं है। प्रत्येक मानव अपने भावों, विचारों एवं अनुभूतियों को भाषा के सहयोग से व्यक्त करता है। सम्पूर्ण जीवमण्डल में केवल को ही भाषा का वरदान ईश्वर से मिला है। भाषा के कारण ही मनुष्य, मनुष्य है और सभी जीवधारियों में सर्वोत्तम स्थान है। भाषा एक मानवीय कलाकृति है।

डार्विन जैसे विचारकों का मत है कि भाषा ईश्वरीय वरदान नहीं है बल्कि ध्वनियों, शब्दों बोली से विकसीत एवं परिष्कृत होकर आज इस अवस्था तक पहुँचती है। भाषा का विकास और मानव का विकास का सीधा संबंध है। भाषा को यदि प्रकृति की देन मानते हैं तो यह प्रकृति की सर्वश्रेष्ठ रचना है। भाषा भावों एवं विचार की जननी है।

भाषा के कारण ही मनुष्य इतना उन्नतशील बन पाया है। बुद्धि तथा विचार चिन्तन शक्ति के कारण ही मनुष्य भाषा का अधिकारी बन सका है। मुंह के अंगों की सहायता से विविध प्रकार की ध्वनियों को उच्चारण से उत्पन्न करता है जिससे अक्षर तथा शब्दों से प्रकट करते हैं।

आज मनुष्य की अनुभूतियों को शाब्दिक भाषा से अभिव्यक्ति करना संभव नहीं है। उनकी अभिव्यक्ति के लिए मूक भाषा का ही प्रयोग किया जाता है लेकिन शाब्दिक्रम व्यक्ति अपनी वेदनाओं की अभिव्यक्ति

आशुभाषा में भी करते हैं। इस प्रकार से भाषा के दो रूप हैं।

भाषा के रूप

शाब्दिक भाषा — अशाब्दिक भाषा

मूक भाषा शरीर भाषा

भाषा की उत्पत्ति का विषय भाषा विज्ञान का क्षेत्र है।

भाषा का अर्थ

भाषा शब्द संस्कृत की 'भाष्' धातु से बना है जिसका अर्थ है बोलना या कहना। वैसे तो सभी जीवधारी बोलते हैं, लेकिन मानव जिस वाणी को बोलता है, बिलकुल अन्य सभी जीवों से पूरी तरह अलग है।

भाषा अभिव्यक्ति एवं विचार विनिमय का सांकेतिक साधन है। संसार के सभी प्राणी किसी न किसी रूप में अपने भावों की अभिव्यक्ति करते हैं। जिसका माध्यम शाब्दिक और अशाब्दिक रूप में सामने आता है। मनुष्य की अनुभूतियों को शाब्दिक भाषा से अभिव्यक्त करना सम्भव नहीं है। उसकी अभिव्यक्ति के लिए मूक भाषा या अशाब्दिक भाषा का ही प्रयोग किया जा सकता है। उदा० —

- अधिक दुखी व्यक्ति अपनी वेदना की अभिव्यक्ति अपने आंसुओं द्वारा,
- कुत्ते भौं - भौं करके
- बिल्ली म्याऊं - म्याऊं करके
- चूहे चू - चू करके तथा शाब्दिक भाषा में मनुष्य बोलकर अपनी भावनाओं को अभिव्यक्त करते हैं।

भाषा का वैज्ञानिक अर्थ

भावाभिव्यक्ति के समस्त साधन भाषा के व्यापक अर्थ में सम्मिलित हो जाते हैं। भाषा - पशु - पक्षियों की भाषा अथवा संस्कृत के टीकाकारों द्वारा 'इति भाषायाम्' द्वारा अभिप्रेत भाषा के सर्वत्र एक ही भाव छिपा हुआ है, वह साधन जिसके द्वारा एक प्राणी दूसरे प्राणी पर अपने विचार भाव या इच्छा जाहिर करता है।

'भाषा' शब्द का प्रयोग बहुत ही व्यापक अर्थ में होता है। हम मनुष्य या अन्य जीवों के भावों को कभी - कभार ध्वन्यात्मक भाषा न होने पर भी संकेतों द्वारा ही समझ लेते हैं। ऐसी दशा में भावाभिव्यक्ति के समस्त साधन भाषा के व्यापक अर्थ में सम्मिलित हो जाते हैं।

भाषा का परिभाषा

- बाबूराम सक्सेना के अनुसार "भाषा से तात्पर्य विचारों एवं भावों का व्यक्तिकरण प्रयुक्त रूप से श्रोता ग्राह्य ध्वनि चिह्नों से प्रमाणित होता है। गौण रूप से दर्शन संकेत अथवा स्पर्श ग्राह्य लेख मुद्रण आदि से है। अर्थात् जिन ध्वनि चिह्नों द्वारा मनुष्य विचार विनिमय करता है, उसको समष्टि रूप से भाषा कहते हैं।"

- सुमित्रानन्दन पंत के अनुसार "भाषा संसार का नादमय चित्र है। ध्वनिमय स्वरूप है। यह विश्व की हृदयतंत्री का झंकार है। जिसके स्वर में अभिव्यक्ति होती है।"

- डॉ. भोलानाथ तिवारी के अनुसार "भाषा उच्चारण अवयवों से उच्चारित ध्वनि प्रतीकों की वह व्यवस्था है। जिसके द्वारा किसी भाषा समाज के लोग आपस में विचारों का आदान-प्रदान करते हैं।"

भाषा की प्रकृति

भाषा के अपना गुण या स्वभाव को भाषा की प्रकृति कहते हैं। अर्थात भाषा के सहज गुण धर्म को भाषा की प्रकृति कहते हैं। इसी को भाषा की विशेषता या लक्षण भी कह सकते हैं। भाषा की प्रकृति को दो भागों में बाँटा जा सकता है।

भाषा की प्रकृति

1. जो सभी भाषाओं के लिए सामान्य है इसे भाषा की सर्वमान्य प्रकृति कह सकते हैं।
2. जो भाषा विशेष में पाई जाती है इसी एक भाषा से दूसरी भाषा में भिन्नता स्पष्ट होती है। इसे विशिष्ट भाषागत प्रकृति कह सकते हैं।

मानव भाषा को विचार-विनिमय द्वारा सीखता है जिसका सदैव विकास होता रहता है। जिसके कारण भाषा परिवर्तनशील रहती है। भाषा सामाजिक प्रक्रिया का का एक अंग है। यह पैतृक सम्पत्ति नहीं है बल्कि इसे अनुकरण द्वारा सीखा जाता है। प्रत्येक भाषा का अपना लक्षण होता है। जिसे उसकी प्रकृति कहा जाता है।

भाषा का प्रकार

भाषा वह साधन है जिसके द्वारा मनुष्य बोलकर, सुनकर, लिखकर व पढ़कर अपने मन के भावों या विचारों का आदान-प्रदान करता है।

दूसरे शब्दों में जिसके द्वारा हम अपने भावों को लिखित या कथित रूप में दूसरों को समझा सके और दूसरों के भावों को समझ सके।

भाषा के प्रकार

1. मौखिक
2. लिखित
3. सांकेतिक

जब श्रोता सामने होता है तो बोलकर हम अपनी बात को कहते हैं। और जब वह सामने नहीं होता है तो लिखकर हम अपनी बात को उस तक पहुँचाते हैं। भाषा का जो मूल रूप है वह मौखिक होता है। इसे सीखने के लिए किसी प्रयास की आवश्यकता नहीं होती है। स्वतः ही सीखी जाती है। जबकि लिखित भाषा को प्रयत्नपूर्वक सीखना पड़ता है। मौखिक भाषा के प्रकार निम्नलिखित हैं —

1) **मौखिक भाषा** :- यह भाषा का मूल रूप है। और सबसे प्राचीनतम है। मौखिक भाषा का जन्म मानव के जन्म के साथ ही हुआ है। मानव जन्म के साथ-साथ ही बोलना शुरू कर देता है। जब श्रोता सामने होता है तब मौखिक भाषा का प्रयोग किया जाता है। और मौखिक भाषा की आधारभूत इकाई होती है। वह होती है 'ध्वनि'। इन्हीं ध्वनियों से शब्द बनते हैं। जिनका वाक्य में प्रयोग किया जाता है।

2) **लिखित भाषा** :- जब श्रोता सामने न हो तो उस तक बात पहुँचाने के लिए मनुष्य को लिखित भाषा की आवश्यकता पड़ती है। लिखित भाषा को सीखने के लिए प्रयत्न और अभ्यास की जरूरत होती है। यह भाषा का स्थायी रूप है जिससे हम अपने भावों और विचारों को आने वाली पीढ़ियों के लिए सुरक्षित रख सकते हैं। इससे

द्वारा हम ज्ञान का संचय करते हैं।

प्रत्येक व्यक्ति जन्म से ही अपनी मातृभाषा सीख लेता है। अशिक्षित लोग भी अपनी भाषाएँ बोल और समझ सकते हैं। भाषा का मूल और प्राचीन रूप मौखिक ही है, लिखित रूप बाद में विकसित हुआ है, इसलिए हम कह सकते हैं भाषा का मौखिक रूप प्रधान रूप है। और लिखित रूप गौण है।

(3) सांकेतिक भाषा :- जिन संकेतों के माध्यम से छोटे बच्चे या गूँगे लोग अपनी बात दूसरों को समझाते हैं तो इन संकेतों को सांकेतिक भाषा कहा जाता है, इसका अध्ययन व्याकरण में नहीं किया जाता है।

उदाहरण :- • छोटे बच्चों के इशारे
• गूँगे बच्चों की वार्तालाप
• यातायात नियंत्रित करने वाली पुलिस

भाषा की लिपि

संसार में विभिन्न भाषाओं को लिखने के लिए अनेक लिपियाँ प्रचलित हैं, जैसे हिन्दी, मराठी, नेपाली, संस्कृत ये सब "देवनागरी लिपि" में लिखी जाती है। उर्दू "फारसी लिपि" में लिखि जाती है। तथा अंग्रेजी "रोमन लिपि" में लिखी जाती है। ये ऐसी कई लिपियाँ हैं जिनके माध्यम से भाषाओं को लिखा जाता है।

(1) हिन्दी → देवनागरी
(2) संस्कृत → देवनागरी

3) अंग्रेजी, फ्रैंच, जर्मन → रोमन
4) पंजाबी → गुरुमुखी
5) उर्दू, फारसी → फारसी
6) रूसी → रूसी

भाषा की विशेषताएँ

भाषा की कुछ विशेषताएँ हैं जो सामान्य रूप से विश्व की समस्त भाषाओं में प्राप्त होती हैं। भाषा के इस स्वरूप का विवेचन ही भाषा विज्ञान का प्रमुख उद्देश्य है। प्रत्येक भाषा के अपने व्याकरण हैं। उनके नियम उसी विशेष भाषा पर लागू होते हैं। परन्तु आगे वर्णित भाषा की विशेषताएँ सभी भाषाओं पर लागू होती हैं।

(i) भाषा सर्वोत्तम ज्योति है :- भाषा संसार की सर्वोत्कृष्ट ज्योति है, जो मानव के हृदय के अन्धकार को दूर करती है। यह ज्ञानज्योति ही विश्व की समस्त मानवों का कार्यकलाप सिद्ध करती है। यह कल्पना भी नहीं किया जा सकता है कि भाषा के बिना मानव की क्या दयनीय स्थिति होती है।

- आचार्य दण्डी ने भाषा की इस प्रकाशशीलता को ध्यान में रखकर कहा है कि " यदि शब्दरूपी ज्योति संसार में न जलती तो संसार में चारों ओर अंधेरा ही रहता।

॥ इदमन्धतमः कृत्स्नं जायेत भुवनत्रयम्
यदि शब्दाह्वयं ज्योतिरासंसारं न दीप्यते ॥

2) **भाषा समाज को एक सूत्र में बाँधती है** :- भाषा ही वह शक्ति है जो संसार को एक सूत्र में बाँध सके। भाषा समन्वय सूत्र है। ऋग्वेद में भाषा को राष्ट्री (राष्ट्र निर्मात्री) और संगमनी (संबंध करने वाली) कहा जाता है।

- आचार्य भर्तृहरि ने उसे विश्व निबन्धनी कहा है।

"अह राष्ट्री संगमनी वसूनाम् ॥

3) **भाषा सर्वव्यापक है** :- मानव का प्रत्येक कार्य भाषा द्वारा संचालित होते हैं। व्यक्ति-व्यक्ति, व्यक्तिसमाज या व्यक्ति स्वयं, सभी स्थितियों में मानव का आधार भाषा ही है। मानव का आंतरिक और बाह्य कार्य, चिन्तन-मनन-अभिव्यजन, वैयक्तिक और सामाजिक कार्यों के लिए भाषा की ही सहायता ली जाती है। आचार्य भर्तृहरि ने सभी लौकिक कार्यों का आधार भाषा को माना है। भाषा से ही ज्ञान होता है, ज्ञान से ही सभी काम होते हैं। अतः भाषा सर्वत्र अनुस्यूत है।

4) **भाषा का कोई अंतिम स्वरूप नहीं है** :- भाषा सतत प्रवहमान एवं नश्वर है, अतः इसका कोई एक अंतिम स्वरूप नहीं हो सकता। विश्व की समस्त वस्तुएँ परिवर्तनशील हैं, उसी प्रकार भाषा भी परिवर्तनशील है। सदा परिवर्तनशील वस्तु का अंतिम स्वरूप नहीं होता है। न संसार का कोई अंतिम स्वरूप है न मानव शरीर का और न मानवीय भाषा का।

5.) भाषा की धारा कठिनता से सरलता की ओर जाती है :- जिस प्रकार जल की धारा ऊपर से नीचे की ओर जाती है। उसी प्रकार भाषा भी कठिनता से सरलता की ओर उन्मुख होती है। जनसाधारण में मुख्यतः बालकों में यह प्रवृत्ति देखी जाती है। कि वे कठिन शब्दों को सरल बना लेते हैं। इसका कारण यह है कि मानव की स्वाभाविक प्रवृत्ति यह है कि वह अल्प श्रम से अधिक लाभ उठाना चाहता है।

6.) भाषा अर्जित सम्पत्ति है :- मानवशरीर के साथ भाषा भी जन्म के साथ नहीं आती है। भाषा को समाज से, समीपस्थ वातावरण से, सहयोगियों एवं साथियों से सीखा जाता है। अपनी-अपनी योग्यता और प्रतिभा के अनुसार मनुष्य बाल्यकाल से भाषा को अर्जित करता है।

7.) भाषा एक माध्यम है जिसके द्वारा मानव-समाज एवं संस्कृति के विचारों एवं कार्यों का सम्प्रेषण किया जाता है।

8.) भाषा मौखिक तथा लिखित प्रतीकों, शब्दों, संकेतों व चिह्नों की व्यवस्था है।

9.) भाषा के माध्यम से मानव अपने ज्ञान को संचित करता है, प्रसार करता है तथा अभिवृद्धि भी करता है।

10.) भाषा मानव की कलाकृति है। जिसके प्रमुख कौशल बोलना, लिखना, पढ़ना तथा सुनना है।

15) ध्वनियुक्त शब्दों, संकेतों तथा लिपि द्वारा भावों एवं विचारों की अभिव्यक्ति ही भाषा है।

भाषा सीखने की प्रक्रिया

i) भाषा को अनुकरण द्वारा सीखा जाता है।

ii) भाषा को अभ्यास तथा प्रशिक्षण द्वारा सीखते हैं।

iii) भाषा सीखने में कौशलों का विकास किया जाता है।

iv) भाषा की शक्ति एवं क्षमताओं का विकास क्रमानुसार होता है।

शिक्षण प्रशिक्षणार्थी पाठ्यक्रम में भाषा की आवश्यकता

हमारे जीवन में प्रतिदिन भाषा की आवश्यकता होती है। पाठ्यक्रम में भाषा का संकुचित अर्थ है पाठ्य विषयों के व्यवस्थित रूप तथा उनमें प्रयुक्त तकनीकी या पारिभाषिक भाषा के रूप से भिन्न शैली सामान्य भाषा के ज्ञान से है जो सभी विषयों के शिक्षकों के लिए आवश्यक है।

यह विज्ञान, टेक्नोलॉजी, कला, वाणिज्य, इतिहास, भूगोल, भाषा के निर्धारित

पाठ्यक्रम में भाषा शैली अध्ययन, अध्यापन की भाषा है। शिक्षक सभी विषयों के शिक्षकों को ज्ञान होना चाहिए।

विस्तृत अर्थ में पाठ्यक्रम के भाषा वह सामान्य भाषा है जो विद्यालय की सभी गतिविधियों में किसी न किसी रूप में व्याप्त है। यह शिक्षक के शिक्षण तथा विद्यार्थी के अधिगम से संबंधित भाषा होने के साथ-साथ पाठ्यक्रम पाठ्य-सामग्री व पाठ्यक्रमेतर भाषा है। यह वह भाषा है जो अध्ययन, लेखन और प्रस्तुतिकरण में सहायक है।

पाठ्यक्रम में भाषा की दूसरी विशेषता यह भी है कि शिक्षण में सामान्य से कक्षा अध्यापन में शिक्षक के लिए यह जानना आवश्यक है कि उनके विद्यार्थियों की भाषागत पृष्ठभूमि क्या है।

कक्षा में विभिन्न जाति, धर्म, सम्प्रदाय, वर्ग, भाषा के छात्र अध्ययनरत रहते हैं। उनके शिक्षक को छात्रों की भाषायी विभिन्नता की विशेषताओं को ध्यान में रखकर शिक्षण व लेखन की सामान्य भाषा का कक्षा-चर्चा, प्रश्न, अभ्यास गतिविधि, शिक्षण व लेखन में प्रयोग प्रोत्साहित करना चाहिए।

शिक्षा प्रशिक्षणार्थी पाठ्यक्रम में भाषा का महत्व

भाषा के बिना हम दैनिक कार्य नहीं कर सकते हैं। इसलिए मनुष्य जीवन के लिए इसका महत्व बढ़ जाता है। बच्चा समाज में ही भाषा सीखता है व प्रयोग करता है, इससे भाषा विकसित होती है। भाषा से सामाजिक शक्ति का विकास होता है जिससे सामाजिक दक्षता भी बच्चों के अंदर पैदा होती है।

- पढ़ने लिखने की प्रकृति की समझ :- पाठ्यक्रम पर भाषा का दूसरा विस्तृत क्षेत्र वाचन या पठन की भाषा की प्रकृति तथा लेखन की प्रकृति की समझ है। वाचन का अर्थ केवल पढ़ना न होकर बोधपूर्वक पढ़ना अर्थात पढ़ते समय कथ्य की समझना भी आवश्यक है अन्यथा वाचन निरर्थक हो सकता है।

- अधिगमकर्ता की भाषायी पृष्ठभूमि :- छात्रों की प्रथम भाषा, दूसरी भाषा, स्कूल की भाषा, शिक्षण की भाषा, पुस्तक की भाषा, लेखन की भाषा, मूल्यांकन व संचार की भाषा के संबंध के प्रति शिक्षकों को संवेदनशील होना चाहिए।

- भाषा वह माध्यम है जिसके द्वारा बच्चे स्वयं से और दूसरों से बात करते हैं। शब्दों से ही वे अपने यथार्थ का रूपण तथा उसकी समझ बनाना शुरू करते हैं। सीखने की प्रक्रिया के लिए भाषा को समझने और उसे स्पष्ट तथा

तथा प्रभावी ढंग से उपयोग करने की क्षमता हासिल करना आवश्यक है।

- शिक्षा से संसार चमकता है, युग युग आगे बढ़ता है।

अंध-कूप से निकला मानव, कदम चाँद पर रखता है।

निष्कर्ष :- इस तरह से कहा जा सकता है कि भाषा का विकास और मानव का विकास का सीधा संबंध है। भाषा के माध्यम से ही मानव अपने ज्ञान को संचित करता है। प्रसार करता है और अभिवृद्धि करता है। भाषा एक ऐसा माध्यम है जिसके द्वारा मानव समाज एवं संस्कृति के विचारों एवं कार्यों का सम्प्रेषण किया जाता है। भाषा एक कला है। और केवल मनुष्य को ही भाषा का अमूल्य वरदान मिला है। भाषा पैतृक सम्पत्ति नहीं है बल्कि यह एक अर्जित सम्पत्ति है। भाषा हमारे जीवन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। भाषा के कारण ही मनुष्य इतना उन्नत प्राणी बन सका है। अपनी विचारों को दूसरों को समझाने का माध्यम ही भाषा है।

भाषा के कारण ही बुद्धि विचार तथा चिंतन शक्ति विकसीत होती है।

इति

COURSE 5

UNDERSTANDING DISCIPLINES AND SUBJECTS (½)

आभार ज्ञापन

शिक्षा मुख्य रूप से द्विपक्षीय प्रक्रिया है जिसमें सीखना और सीखाना महत्वपूर्ण है। बी० एड० कार्यक्रम के अंतर्गत प्रत्येक स्तर पर निर्देशन, परामर्श आदि दोनों क्षेत्रों का महत्वपूर्ण स्थान है।

बी० एड० कार्यक्रम के अंतर्गत हमें समस्त व्याख्यातागण का सहयोग मिला। इसमें हमें व्यक्ति में वृद्धि व विकास की जानकारी प्राप्त हुई।

मैं सक्रिय कार्य के लिए सबसे पहले महाविद्यालय **भारथी कॉलेज ऑफ एजुकेशन** में **पाठ्यक्रम में विषयों की समझ** के व्याख्यता **सहायक प्रोफेसर मनोज कुमार गुप्ता** के निर्देशन में इस कार्य को पूर्ण किया। जिसके लिए मैं उनके प्रति सहृदय अभारी हूँ।

धन्यवाद।

प्रशिक्षु का नाम	:- मधुमिका कुजूर
रोल नं०	:- 10
कक्षा	:- बी० एड० (प्रथम वर्ष)
सत्र	:- 2021-2023

शिक्षा दर्शन से क्या तात्पर्य है? शिक्षा और दर्शन के संबंध की विवेचना करें?

शिक्षा दर्शन, दर्शन की वह शाखा है जिसमें हम शिक्षा संबंधी समस्याओं पर दार्शनिक दृष्टिकोण से विचार करते हैं यह एक प्रयुक्त दर्शन है जब हम विशुद्ध दर्शन के आधारभूत प्रत्ययों तथा सिद्धांतों का प्रयोग शिक्षा के क्षेत्र में करते हैं तो हम उसे 'शिक्षा दर्शन' कहते हैं।

शिक्षा दर्शन अध्ययन का एक नया क्षेत्र है जिसमें दर्शन एवं शिक्षा ने सामाजिक समस्या को लेकर चिंतन करता है और उसका समाधान निकाला जाता है। यही पाठ्यवस्तु को शिक्षा दर्शन की संज्ञा दी जा सकती है।

दर्शन जीवन की समस्याओं को दार्शनिक दृष्टिकोण समझने का प्रयास करता है और उसके लिए जो समाधान दिया जाता है शिक्षा उसको व्यवहारिक रूप देती है।

शिक्षा दर्शन शिक्षा के क्षेत्र में गहन समस्याओं का समग्र रूप में अध्ययन करता है। और शिक्षा विज्ञान के लिए उन समस्याओं को अध्ययन के लिए छोड़ देता है। जो तत्कालिक है तथा जिसका वैज्ञानिक विधि से सरलतापूर्वक अध्ययन किया जा सकता है। उदा०- छात्र योग्यता

के मापन की समस्या इत्यादि।

शिक्षा में दर्शन की अवधारणा

किसी भी देश की शिक्षा प्रणाली का उस देश के दर्शन से घनिष्ट सम्बन्ध होता है। कोई भी राष्ट्र की शिक्षा अपना आधार दार्शनिक सिद्धांत को ही बनाकर चलती है। शिक्षा के उद्देश्य, पाठ्यक्रम, शिक्षण विधियाँ, अनुशासन तथा गुरु-शिष्य सम्बन्ध ये सभी दर्शन के रूप किसी न किसी रूप में, प्रकार से दार्शनिक सिद्धांतों से जुड़े रहते हैं। यदि देश में प्रकृतिवाद, प्रयोजनवाद इत्यादि का दर्शन स्वीकार किया गया तो शिक्षा प्रणाली उसी से प्रभावित होगी। कहने का तात्पर्य है कि दर्शन और शिक्षा आपस में निकट से सम्बन्धित हैं।

आज के युग में ऐसा कोई व्यक्ति नहीं है, जिसके विचार किसी भी सम्बन्ध में दूसरे से अलग न हों। इसी प्रकार शिक्षा के बारे में भी उस व्यक्ति की कोई धारणा अवश्य होगी। अपने जीवन दर्शन के आधार पर ही उसके विचार आधारित होंगे क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति के सोचने का ढंग अलग होता है।

प्रायः देखा गया है कि एक व्यक्ति का जीवन दर्शन भी दूसरे व्यक्ति के जीवन दर्शन से भिन्न होता है।

साथ ही नाना विचारों में समन्वय भी पाया जाता है।

अतः शिक्षकों और दार्शनिकों द्वारा शिक्षा के स्वरूप का निर्धारण अत्यन्त कठिन हो जाता है क्योंकि शिक्षा के भी समन्वित उनकी धारणा उनके जीवन दर्शन से समन्वित होती है। इससे आभास होता है कि शिक्षा तथा दर्शन में कुछ सम्बन्ध अवश्य है।

दर्शन का अर्थ

'दर्शन' शब्द का उद्गम 'दृश' धातु से हुआ है, जिसका अर्थ 'देखना' है। हिन्दी शब्द दर्शन को अंग्रेजी में philosophy (फिलॉसफी) कहते हैं। जो ग्रीक शब्दों फिलॉस तथा सोफिया से मिलकर बना है। जिसमें फिलॉस का अर्थ (Love) 'प्रेम' है। सोफिया का अर्थ (ज्ञान) का (of wisdom) है। इस प्रकार Philosophy का अर्थ (Love of wisdom) है, अर्थात नवीन ज्ञान की खोज में रहना ही दर्शन है।

- दर्शन
  - → भारतीय → दृश्य
    - → चक्षु (भौतिक जगत)
    - → सूक्ष्म (अलौकिक जगत)
  - → पाश्चात्य → फिलॉसफी
    - → फिलॉस → प्रेम
    - → सोफिया → ज्ञान

दर्शन के शाब्दिक अर्थ

दर्शन के शाब्दिक अर्थ को हम दो दृष्टिकोण से समझ सकते हैं।

शाब्दिक अर्थ

(i) भारतीय दृष्टिकोण

(ii) पाश्चात्य दृष्टिकोण

1) भारतीय दृष्टिकोण :- इसके अनुसार दर्शन शब्द संस्कृत के दृश्य धातु से बना है जिसका अर्थ होता है देखना। देखना भी दो रूपों से देख सकते हैं एक सूक्ष्म नेत्रों से देखना दूसरा चक्षु इन्द्रियों से देखना। सूक्ष्म नेत्रों से देखते हैं तो हमें अलौकिक / आध्यात्मिक जगत का ज्ञान होता है। वहीं चक्षु नेत्रों से देखने पर लौकिक जगत या भौतिक जगत का ज्ञान होता है।

2) पाश्चात्य दृष्टिकोण :- इसके अनुसार दर्शन शब्द अंग्रेजी शब्द Philosophy का हिन्दी रूपांतरण है। Philosophy शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है। Philos और Sophia यहाँ Philos का अर्थ है प्रेम और shophia का अर्थ है ज्ञान अर्थात् ज्ञान अर्थात् ज्ञान के प्रति प्रेम।

3 दर्शन का विशिष्ट अर्थ :- इसका अर्थ अमूर्त चिंतन के उस प्रयास से है जिसके द्वारा आत्मा, ईश्वर, प्राकृति तथा सम्पूर्ण जीवन क्या है, जीवन का उद्देश्य क्या है, व्यक्ति इस संसार में क्यों आया है, मृत्यु क्या है, ईश्वर का स्वरूप क्या है इन सब का उत्तर देने का प्रयास दर्शन के द्वारा किया जाता है।

विद्वानों के अनुसार, सत्य तथ्यों की खोज करना ही दर्शन है तथा दर्शन अ व्यक्तियों द्वारा विकसित होता है जो दार्शनिक होते हैं परंतु कुछ विद्वानों के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति का कुछ न कुछ दर्शन होता है, उसका जीने, सोचने तथा कार्य करने का अपना ही ढंग होता है। जिस मनुष्य का कोई जीवन दर्शन नहीं है वह अपने जीवन-यापन में सुख नहीं प्राप्त कर सकता और इधर उधर भटकता रहता है।

परिभाषाएँ

दर्शन की परिभाषाएँ विभिन्न विद्वानों द्वारा निम्नलिखित प्रकार से की गयी है।

जॉर्ज ई. पैट्रिक के अनुसार, "वास्तविक दर्शन वह है, जिसमें युवकों को जीवन के प्रति उचित दृष्टिकोण अपनाने के लिए प्रेरित करने और सम्पूर्ण समाज में शिक्षा के उचित विचारों को ग्रहण करने की शक्ति होती है।

आर डब्लू. सैलर्स के शब्दों में, "दर्शन व्यवस्थित विचारों द्वारा विश्व और मनुष्य की प्रकृति के विषय में ज्ञान प्राप्त करने का निरन्तर प्रयत्न है।"

बर्ट्रेण्ड रसैल के मत में, " अन्य अध्ययनों के समान दर्शन का मुख्य उद्देश्य ज्ञान की प्राप्ति है।"

इन परिभाषाओं को दृष्टिगत रखते हुए एक नवीन सामान्य परिभाषा इस प्रकार दी जा सकती है - " दर्शन उचित ढंग से अनवरत विचारने की एक कला है, जो मानव जीवन के सन्दर्भ में किसी भी रूप में काम आने वाली सभी वस्तुओं के सम्बन्ध में तर्कपूर्ण ढंग से विचार करती है। तथा तथ्य के निकट पहुँचने का प्रयास करती है।

शिक्षा दर्शन के प्रकृति

(i) शिक्षा दर्शन शिक्षा की समस्याओं का समाधान दार्शनिक तरिके से देने का प्रयास करता है।

(ii) शिक्षा दर्शन से शिक्षा कार्य में संलग्न लोगों को निर्देशन की प्राप्ति होती है। जिससे वे भविष्यगत समस्याओं के प्रति सचेत हो जाते हैं।

(iii) शिक्षा दर्शन शिक्षा तथा जीवन का समीक्षात्मक अध्ययन है।

(iv) शिक्षा दर्शन शिक्षा शास्त्र और दर्शनशास्त्र का एक अभिन्न विषय क्षेत्र है।

(v.) शिक्षा दर्शन शिक्षा में संलग्न लोगों को द्वन्द्व से बचाता है। और समन्वयवादी दृष्टिकोण प्रदान कर समायोजन में सहायता प्रदान करता है।

शिक्षा दर्शन के कार्य क्षेत्र

शिक्षा दर्शन - शिक्षा दर्शन के अंतर्गत शिक्षा के समस्त कार्यों समस्याओं और विधियों पर दार्शनिक की दृष्टि से विचार किया जाता है। शिक्षा दर्शन के निम्न कार्य हैं -

- शिक्षा दर्शन शिक्षा के उद्देश्यों का निर्धारण करता है।
- वह शिक्षण विधि का निर्धारण करता है।
- यह अनुशासन तथा शिक्षा व्यवस्था का निर्धारण करता है।
- शिक्षक से संबंधित कार्यों तथ्यों का निर्धारण करता है।
- मूल्यांकन एवं परीक्षा के लिए तथ्यों का निर्धारण करता है।

शिक्षा दर्शन के उद्देश्य

(i) शिक्षा दर्शन शिक्षक - शिक्षार्थी की शंकाओं का समाधान करना तथा जटील गुत्थियों को सुलझाने में सहायता देना।

(ii) शिक्षक - विद्यार्थी को कल्याणकारी मार्गदर्शन प्रदान करना।

(iii) सांस्कृतिक विकास हेतु पृष्ठभूमि विनिर्मित करना।

(iv) वैश्विक परिप्रेक्ष्य में शैक्षिक चिंतन को मूर्त रूप देना

(v) समाज में फैली कुरीतियों का अंत करना।

शिक्षा दर्शन की आवश्यकता

(i) शिक्षा दर्शन विद्यार्थियों के बहुमुखी विकास में सहायक है।

(ii) देश की परंपरा के अनुरूप शिक्षा के उद्देश्यों के निर्धारण में सहायक है।

(iii) शिक्षा दर्शन शिक्षक को अपने शिक्षण को व्यवहारिक बनाने में सहायक है।

(iv) शिक्षा दर्शन मानवता एवं शांति के स्थापना में सहायक है।

(v) शिक्षा दर्शन शिक्षा की विविध समस्याओं के तार्किक समाधान में सहायक है।

(vi) शिक्षा दर्शन शिक्षक को अपना जीवन दर्शन निर्धारित करने में सहायक है।

शिक्षा दर्शन का गतिशील पक्ष

उपरोक्त वर्णन से यह स्पष्ट है कि शिक्षा तथा दर्शन एक-दूसरे से अलग नहीं किए जा सकते हैं। एक के बिना दूसरे का कोई अस्तित्व नहीं। इसके साथ सर जॉन एडम्स ने विचार प्रकट किये - "शिक्षा दर्शन का गतिशील पहलु है। यह दार्शनिक विश्वास का सक्रीय पक्ष और जीवन के आदर्शों को प्राप्त करने का व्यवहारिक साधन है।" समाज में शिक्षा विभिन्न रूपों में चली आ रही है। इसमें से प्रमुख रूपों का विवरण इस प्रकार से है -

* आदर्शवाद के अन्तर्गत व्यक्ति के प्रमुख गुण एक आदर्श के रूप में होता है था और व्यक्ति का मुख्य उद्देश्य इस आदर्श तक पहुँचना था। धार्मिक शिक्षा पर आधारित बल था। आदर्शवाद आत्मा

तथा मन को अधिक महत्व दिया था। आदर्शवाद के बारे में प्लेटो ने कहा है कि "शिक्षा द्वारा सत्यम्, शिवम् तथा सुन्दरम के उद्देश्य के उद्देश्य को अपनाया जाना चाहिए। इनके लिए ये तीनों ही सबसे उच्च यथार्थताएँ थी।

(2) प्रकृतिवाद अपने शुद्ध रूप में वैज्ञानिक विचारधारा पर केंद्रित है। यह प्रकृति को सर्वोत्तम सत्ता के रूप में स्वीकार करता है। अर्थात इसकी आस्था केवल भौतिक ब्रह्माण्ड में ही रूसो ने कहा कि "प्रत्येक वस्तु प्रकृति के निर्माता के यहाँ से अच्छे रूप में आती है केवल मनुष्य के सम्पर्क से ही वह दूषित हो जाती है।"

(3) यथार्थवाद में संसार को यथार्थ माना गया है तथा अनुभवों को ब्राह्य संसार के गुण माना गया है। इसके अनुसार शिक्षा वर्तमान समय पर आधारित होनी चाहिए जो वर्तमान उद्देश्यों को पूर्ण करती हो। यथार्थवाद शिक्षा द्वारा अनुशासन स्थापित करना चाहता है। कमेनियस के अनुसार, "विद्यालय मनुष्यों के चरित्र निर्माण का एक सच्चा स्थान है तथा शिक्षा का उद्देश्य अच्छा जीवन है।"

उपरोक्त दर्शनों को देखने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि शिक्षा समय, देश, काल एवं परिस्थिति के अनुसार बदलती रहती है। इसलिए गतिशील माना गया है।

जेन्टाइल के अनुसार, "दर्शन के बिना शिक्षा की प्रक्रिया सही मार्ग पर अग्रसर नहीं हो सकती।"

शिक्षा तथा दर्शन में सम्बन्ध

• यदि शिक्षा को दर्शन से अलग कर दिया जाए तो शिक्षा अर्थहीन रह जाएगी, जिस प्रकार बिना जीवन के शरीर। दर्शन ही पाठ्यक्रम, विधि एवं अनुशासन आदि का निर्धारण करता है।

शिक्षा के लिए दर्शन अत्यधिक आवश्यक है। शिक्षा मानव जीवन के लिए जिस प्रकार आवश्यक है; उसी प्रकार दर्शन भी मानव जीवन का एक अभिन्न अंग है क्योंकि दर्शन ही शिक्षा की आधारशिला है। दर्शन द्वारा ही शिक्षा का स्वरूप, शिक्षा के उद्देश्य, पाठ्यक्रम शिक्षण, विधि, विद्यालय संगठन, अनुशासन एवं छात्र के कर्तव्य आदि को एक निश्चित स्वरूप प्रदान किया जाता है।

बिना दर्शन के शिक्षा का कोई निश्चित स्वरूप नहीं रह जाएगा। अतः उद्देश्यहीन चलते पथिक के समान होगी, जिसको की यह भी मालूम नहीं कि उसको कहाँ तक किस मार्ग तक जाना है। बटलर के अनुसार, "शिक्षा

प्रयोगों के लिए दर्शन एक पथ प्रदर्शक है। शिक्षा, अनुसन्धान के क्षेत्र में मार्गदर्शक रूप में दार्शनिक निर्णय हेतु निश्चित सामग्री को आधार रूप प्रदान करती है।

शिक्षा में दर्शन की आवश्यकता से यह स्पष्ट हो जाता है बिना दर्शन के शिक्षा उद्देश्यहीन है। इसी प्रकार दर्शन का विकास शिक्षा की उत्तमता पर निर्भर करता है तथा दर्शन का प्रचार भी शिक्षा के द्वारा ही सम्भव है। शिक्षा मानव का मानसिक, शारीरिक एवं संवेगात्मक विकास करती है, जो स्वस्थ चिन्तन को जन्म देते हैं और स्वस्थ चिन्तन ही दर्शन का आधार है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। रॉस ने इन्हें एक ही सिक्के के दो पहलू कहा है। अतः शिक्षा तथा दर्शन के परस्पर सम्बन्ध को निम्नलिखित रूप में व्यक्त किया जा सकता है -

★ 1) शिक्षा में दर्शन :- शिक्षा मानव जीवन को सुखमय तथा आनंदमय बनाती है। यह मानव जीवन को

उद्देश्यपूर्ण पथ की ओर अग्रसर करके अर्थ सार्थक बनाती है। प्रत्येक जीवन एक निश्चित विश्वास पर आधारित होता है। शिक्षा के अन्तर्गत उपयोगी विश्वासों को ही लिया जाता है।

अतः दर्शन और शिक्षा एक दूसरे से समन्वित हैं। दर्शन ही शिक्षा के स्वरूप को निर्धारित करता है। यही नहीं शिक्षा की प्रत्येक क्रिया दर्शन पर ही आधारित होती है, जो आने वाली पीढ़ी को नवीन चिंतन के लिए अग्रसर करती है।

यदि देखा जाए तो सभी दार्शनिकों (प्लेटो, लॉक, काण्ट, डीवी, स्पेन्सर आदि।) के जीवन चक्रों तथा विचारों का शिक्षा के अंतर्गत शिक्षा शास्त्र तथा दर्शन शास्त्र विषयों के रूप में अध्ययन किया जाता है।

★ 2) दर्शन में शिक्षा :- दर्शन प्रायः नवीन तथ्यों की खोज में रहता है, सत्य की ओर बढ़ने का प्रयास करता है। प्राप्त तथ्यों को

कसौटी पर कसने का प्रयास करता है। और शैक्षिक अनुभवों का लाभ उठाकर जीवन में शिक्षा के महत्व की खोज करता है।

यदि प्राचीन काल से अब तक शिक्षा का अध्ययन किया जाए तो वह भी समय-समय पर परिवर्तित होती रही है। और शिक्षा वह महत्वपूर्ण साधन है। जो मानव का सर्वांगीण विकास करके उसे दर्शन के तथ्यों की ओर बढ़ने के लिए प्रोत्साहित करती है।

प्रत्येक शैक्षिक प्रश्न निश्चित रूप से जीवन दर्शन से सम्बन्धित होता है।

अतः शिक्षा तथा दर्शन दोनों के तथ्य एक-दूसरे के विकास में सहायक हैं। दर्शन और शिक्षा एक दूसरे पर अन्योन्याश्रित हैं। दर्शन में शिक्षा के स्वरूप को विद्वानों ने इस प्रकार स्पष्ट किया है।

1) जॉन डीवी के अनुसार - "दर्शन अपने सामान्यतम रूप में शिक्षा सिद्धान्त है।"

2) फिक्टे के शब्दों में - "शिक्षा की कला दर्शनशास्त्र की सहायता के बिना

पूर्णता एवं स्पष्टता को प्राप्त नहीं कर सकती।"

3.) स्पेन्सर के अनुसार – "वास्तविक शिक्षा का संचालन वास्तविक दार्शनिक ही कर सकता है।

शिक्षा के विभिन्न पक्ष पर दर्शन का प्रभाव

शिक्षा का दर्शन से अटूट सम्बन्ध है, इसलिए शिक्षा दर्शन से पूर्णतया प्रभावित होती है ठीक उस प्रकार जिस प्रकार कि किसी व्यक्ति की संगति से दूसरा व्यक्ति प्रभावित होता है।

अतः शिक्षा के विभिन्न पक्ष - उद्देश्य, पाठ्यक्रम, पुस्तकें, शिक्षण विधियाँ, अनुशासन, मूल्यांकन, शिक्षक और विद्यार्थी आदि दर्शन से प्रभावित होते हैं। शिक्षा के इन पक्षों पर दर्शन के प्रभाव को निम्नलिखित रूप में देखा जा सकता है –

1.) उद्देश्य पर प्रभाव
2.) पाठ्यक्रम पर प्रभाव
3.) पाठ्य-पुस्तकों पर प्रभाव
4.) शिक्षण की विधियों पर प्रभाव
5.) शिक्षक पर प्रभाव

1.) उद्देश्यों पर प्रभाव :- शिक्षा के उद्देश्यों का निर्धारण दर्शन ही करता है। जिस प्रकार के जीवन दर्शन की आवश्यकता होगी, मनुष्य को उसी रूप में ढालना आवश्यक होगा।

शिक्षा के उद्देश्य देश, काल तथा परिस्थितियों के अनुसार अलग - अलग निर्धारित होते हैं।

बालक को प्राकृतिक वातावरण से परिचित कराना ही इसका प्रमुख उद्देश्य था।

2.) पाठ्यक्रम पर प्रभाव :- पाठ्यक्रम का अर्थ है - उद्देश्यों का ज्ञान प्राप्त करने की व्यवस्थित क्रियाओं का संकलन। इसके द्वारा उद्देश्यों की अनुभूति होती है। बाल्यकाल में पुस्तकीय ज्ञान को उचित नहीं माना। प्रकृतिवाद में किशोरावस्था के लिए गणित, भाषा, संगीत, हस्तकला, सामाजिक शिक्षा को उचित समझा गया।

3.) पाठ्य - पुस्तकों पर प्रभाव :- शिक्षा प्रदान करने के लिए पुस्तकें अत्यंत आवश्यक उपकरण हैं। जिनसे उद्देश्यों की प्राप्ति हो सकती है, अच्छी पुस्तक का चयन भी दर्शन द्वारा प्रभावित होता है।

4) शिक्षण की विधियों पर प्रभाव :- शिक्षण-विधियाँ वह माध्यम है जिनके द्वारा उद्देश्यों को प्राप्त करना और भी सरल बना दिया जाता है। शिक्षण विधियों पर भी दर्शन का प्रभाव होता है।

5) शिक्षक पर प्रभाव :- शिक्षक को भी विभिन्न दर्शनों में भिन्न-दृष्टिकोण से लिया गया है तथा शिक्षक की कार्य-विधि एवं क्षमताओं का निर्धारण किया गया है।

अतः अध्यापक निष्क्रिय माना गया है। अध्यापक यथा संभव छात्र को समझने का प्रयत्न करता है।

<u>निष्कर्ष</u> :- इस प्रकार हम देखते हैं कि शिक्षा और दर्शन एक दूसरे से जुड़े हुए हैं। जिसमें शिक्षा को हम कई भागों में बाँटकर देख सकते हैं। और शिक्षा दर्शन अध्ययन का नया क्षेत्र के रूप में देखते हैं जिसमें दर्शन एवं शिक्षा सामाजिक समस्या को लेकर चिंतन करता है।

और यदि शिक्षा से दर्शन को अलग कर दी जाए तो शिक्षा अर्थहीन हो जाएगी।

शिक्षा के लिए दर्शन अत्यधिक आवश्यक है। क्योंकि दर्शन ही शिक्षा की आधारशिला है। दर्शन द्वारा ही शिक्षा की स्वरूप, उद्देश्य, विद्यालय, अनुशासन को सुनिश्चित किया जा सकता है।

दर्शन के बिना शिक्षा के कोई स्वरूप है ही नहीं। शिक्षा मानव का मानसिक शारीरिक एवं संवेगात्मक विकास करती है। जो स्वस्थ्य चिंतन को जन्म देते है। और स्वस्थ चिन्तन ही दर्शन का आधार है।

COURSE 6

GENDER, SCHOOL AND SOCIETY (½)

आभार ज्ञापन

शिक्षा मुख्य रूप से द्विपक्षीय प्रक्रिया है जिसमें सीखना और सीखाना महत्वपूर्ण है। बी॰ एड॰ कार्यक्रम के अंतर्गत प्रत्येक स्तर पर निर्देशन, परामर्श आदि दोनों क्षेत्रों का महत्वपूर्ण स्थान है |

बी॰ एड॰ कार्यक्रम के अंतर्गत हमें समस्त व्याख्यातागण का सहयोग मिला | इसमें हमें व्यक्ति में वृद्धि व विकास की जानकारी प्राप्त हुई |

मैं सक्रिय कार्य के लिए सबसे पहले महाविद्यालय **भारथी कॉलेज ऑफ एजुकेशन** में **लिंग विद्यालय और समाज** के व्याख्यता **विवेक राज जायसवाल** के निर्देशन में इस कार्य को पूर्ण किया | जिसके लिए मैं उनके प्रति सहृदय अभारी हूँ |

धन्यवाद |

प्रशिक्षु का नाम	:- मधुमिका कुजूर
रोल नं॰	:- 10
कक्षा	:- बी॰ एड॰ (प्रथम वर्ष)
सत्र	:- 2021-2023

प्रश्न समाज में स्त्रियों की भूमिका क्या है? लिंगिय विभेद को दूर करने के लिए संविधान में क्या उपाय है?

शिक्षा किसी भी सफल समाज का मापक होता है और विशेषतया स्त्रियों तथा बच्चियों की शिक्षा के द्वारा उस समाज की प्रगति का आकलन किया जा सकता है। स्त्रियों की शिक्षा उनके अस्तित्व की सुरक्षा तथा मुख्य धारा में लाने के लिए आवश्यक है। समाज तथा परिवार तब तक शिक्षित नहीं हो सकता जब तक स्त्रियों की शिक्षा की वहाँ समुचित व्यवस्था नहीं होगी।
• महात्मा गाँधी के अनुसार "एक पुरुष यदि शिक्षित होता है तो वह स्वयं शिक्षित होता है लेकिन यदि एक स्त्री शिक्षित होती है तो उसका सम्पूर्ण परिवार शिक्षित होता है।

शिक्षा का शाब्दिक अर्थ तो सीखना है परंतु यह सीखने की प्रक्रिया जीवन के प्रत्येक क्षण में चलती है। घर, बाहर तथा विद्यालय सब जगह सीखने की प्रक्रिया सम्पन्न होती है।

स्त्रियों की स्थिति सुधार के लिए सबसे प्रभावी भूमिका का निभाती है वह है "शिक्षा"। स्त्रियों की शिक्षा के लिए प्राचीन काल से ही आवश्यकता समझी जा रही है तथा विचारकों की, समाजसुधारकों और दार्शनिकों तथा भारतीय संविधान

स्त्रियों की स्थिति में सुधार के लिए पर्याप्त उपबन्ध किए गए हैं।

लिंगीय विभेद का अर्थ

लिंगीय विभेद का अर्थ है बालक तथा बालिकाओं के मध्य व्याप्त लैंगिक असमानता। बालक तथा बालिकाओं में उनके लिंग के आधार पर कोई करना जिसके कारण बालिकाओं को समाज में शिक्षा में तथा पालन-पोषण में बालकों से निम्नतर स्थिति में रखा जाता है। जिससे वे पिछड़ जाती हैं। बालक तथा बालिकाओं में विभेद उसके लिंग को लेकर किया जाता है।

प्राचीन काल से ही यह अवधारणा प्रचलित रही है कि जीवित पुत्र का मुख देखने मात्र से ही नरक और कई प्रकार के पापों से मुक्ति मिल जाती है। और बालिकाओं की प्रत्येक प्रकार से सुरक्षा करनी पड़ती है। अतः बालक श्रेष्ठ है और कुल का गौरव तथा कुल का नाम आगे ले जाने में उनकी महत्वपूर्ण भूमिका है।

प्राचीन काल में स्त्रियों की स्थिति तथा शिक्षा

प्राचीन काल में स्त्रियों की स्थिति

- वेदों का अध्ययन, यज्ञ कर सकती थी।
- विधवाओं का पुनर्विवाह की अनुमति थी।
- प्राचीन काल में शतपथ ब्राह्मण में उल्लेख है कि पत्नी के बिना पुरुष अधूरा है। इसके बिना यज्ञ भी अधूरा समझा जाता था।
- और ऐतरेय ब्राह्मण में पत्नी को मित्र माना जाता था।
- अविवाहित पुत्री को ही पिता के सम्पत्ति में अधिकार था।
- समाज में स्त्रियों का आदर किया जाता था तथा परिवार में सम्मान भी मिलता था।
- शिक्षा ग्रहण करने का अधिकार

प्राचीन काल में ऋग्वेद में पुत्री की जन्म पर दुखी होने का साक्ष्य नहीं मिलती है। लेकिन पुत्र जन्म का कामना की जाती थी। अथर्ववेद में पुत्र जन्म के लिए धार्मिक संस्कारों का उल्लेख किया गया है।

प्राचीन कालीन समाज में वर्णाश्रम व्यवस्था प्रचलित थी जिसमें समाज ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र में विभाजित था। ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य को शिक्षा प्राप्त करने

करने का अधिकार था। इन तीनों वर्णों की स्त्रियों को भी पुरुषों की भाँति शिक्षा प्राप्ति का अधिकार था। स्त्रियाँ पुरुषों के समान धार्मिक क्रियाकलापों में भाग लेती थी। युद्धक्षेत्र में भी जाकर अपना कौशल प्रदर्शित करती थी। गार्गी, घोषा, लोपामुद्रा, विश्ववारा, अपाला, उर्वशी, मैत्रेयी, अरुन्धती तथा अनुसूया इत्यादि विदुषी महिलायें इसी युग में हुई।

उत्तर वैदिक काल तक आते-आते स्त्रियों की स्थिति में भी परिवर्तन आया, क्योंकि भारतीय संस्कृति का अन्य एकरसताओं तथा संस्कृतियों के साथ संक्रमण हुआ, जिसके परिणामस्वरूप उनकी उन्नत स्थिति में विघटन के लक्षण परिलक्षित हुए तथा उन पर कुछ सामाजिक प्रतिबन्ध लगा दिये गये।

प्राचीन कालीन महिलाओं की स्थिति तथा उनकी शिक्षा के अन्तर्गत बौद्ध काल तथा उनकी शिक्षायें भी आती हैं। बौद्ध काल में महात्मा बुद्ध ने तत्कालीन समाज में जिन बुराइयों को देखा और जिन बुराइयों ने उनके अन्तस् को उद्वेलित कर दिया वे निम्न प्रकार थी -

(1) स्त्रियों की दयनीय दशा
(2) अन्धविश्वास तथा कुरीतियाँ
(3) जाति व्यवस्था
(4) ऊँच-नीच का भाव।

महात्मा बुद्ध ने स्वयं ज्ञान प्राप्ति के लिए कठोर तप किए तथा ज्ञान-प्राप्ति के पश्चात उन्होंने घूम-घूमकर अपनी शिक्षाओं का प्रचार-प्रसार किया। प्रारंभ में तो उन्होंने बौद्ध संघों से स्त्रियों को पृथक रखा, परंतु बाद में अपनी मौसी तथा प्रथम बौद्ध भिक्षुणी महामाया गौतमी के कहने पर संघ में स्त्रियों के प्रवेश की अनुमति प्रदान कर दी। संघमित्रा, पद्मा इत्यादि स्त्रियों ने बौद्ध शिक्षा ग्रहण की।

मध्यकाल में स्त्रियों की स्थिति

मध्यकाल में स्त्रियों की स्थिति में गिरावट आने लगी थी उनका जीवन नियंत्रित था। बहु प्रथा प्रचलन था लेकिन विधवा विवाह पर अंकुश लगा हुआ था।

मध्यकाल में स्त्रियों की स्थिति

1. पर्दा-प्रथा
2. स्त्रियों को विलास की वस्तु मानना
3. स्त्रियों को पुरुषों की अपेक्षा हीन मानना
4. सती-प्रथा, बाल-विवाह इत्यादि कुरीतियाँ
5. स्त्रियों का कार्यक्षेत्र घर की चहारदीवारी तक सीमित मानना।
6. स्त्रियों के साथ दुर्व्यवहार तथा उनका शोषण

के साथ खिलवाड़ ।

मध्यकाल में स्त्रियों की सती प्रथा का प्रचलन था । तथा जीवन भर वे भिक्षुनियों के समान रहे । इनका जीवन नियंत्रित हो गई थी । लेकिन हिन्दू समाज में अनेक शिक्षित महिलाएं थी । जैसे अवन्ती सुन्दरी , पद्मिनी आदि । लेकिन इस काल में हिन्दु तथा मुस्लिम समाज की महिलाओं में अंतर थी । मुस्लिम महिलाओं में पर्दा प्रथा का प्रचलन था । जिसके कारण शिक्षा का अभाव था । इनका शिक्षा कुरान के अध्ययन तक ही सीमित थी । सल्तनत काल में स्त्रियों की स्थिती बहुत ज्यादा संतोषजनक नहीं थी ।

मध्यकाल को सल्तनत काल तथा मुस्लिम काल के नाम से जाना जाता है । इस काल तक आते - आते स्त्रियों की स्थिति तथा प्राचीन गौरव में बहुत अधिक ह्रास आ गया । इस काल में प्राचीन कालीन शिक्षा व्यवस्था पर कुठाराघात करने का प्रयास किया गया । और उसके स्थान पर मुस्लिम शिक्षा का प्रचार - प्रसार किया गया ।

स्त्री शिक्षा का सबसे अधिक पतन का काल रहा है । परंतु अपवादस्वरूप कुछ स्त्रियों के नाम प्राप्त होते हैं , जिन्होंने शिक्षा ग्रहण की । इनमें रजिया सुल्तान , गुलबदन , नूरजहाँ , जहाँआरा , मुक्ताबाई , जीजाबाई ।

तथा अहिल्याबाई का नाम प्रमुखता से लिया जा सकता है। और कुलीन घरानों के महिलाओं को घर पर ही शिक्षित किया जाता था। इस प्रकार से ज्ञात होता है कि स्त्रियां की सामाजिक स्थिति तथा शिक्षा व्यवस्था अच्छी नहीं थी।

मध्यकाल को सल्तनतकाल तथा मुस्लिम काल के नाम से भी जाना जाता है। मध्यकाल भाते-भाते स्त्रियों के स्थिति तथा प्राचीनकालिन गौरव में बहुत अधिक ह्रास आ गया।

ब्रिटिश काल में स्त्रियों की स्थिति तथा शिक्षा

ब्रिटिशकाल में स्त्रियों की स्थिति

- स्त्रियाँ तथा पुरुषों में लैंगिक विभेद मानना
- स्त्रियों को पुरुषों की उपेक्षा हीन मानना
- पढ़ी लिखी स्त्री को घर के विनाश का का कारण मानना
- स्त्रियों को पुरुष की पूरक मानना तथा स्वतन्त्र अस्तित्व को नकारना।
- विधवा विवाह न होना
- सती-प्रथा, पर्दा-प्रथा तथा बाल-विवाह इत्यादि कुरीतियों ने स्त्रियों की स्थिति को गर्त में पहुँचा दिया।

उपनिवेशकाल में महिलाओं की स्थिति:- [illegible] के आरम्भ में [illegible]

वे सभी कुप्रथाएँ समाज का अभिन्न अंग बनी रही जिसका विकास मध्यकाल में हुआ। ब्रिटिश काल में दहेज प्रथा का प्रचलन हो गया था। जिसके फलस्वरूप लड़कियों को भार समझा जाता था। इस काल में राजा राम मोहन राय, ईश्वर चंद्र विद्यासागर आदि के प्रयत्नों से समाज सुधार आंदोलन हुआ जैसे सती प्रथा, बालिका हत्या, बाल विवाह, विधवा पुनर्विवाह पर नियंत्रण तथा स्त्री शिक्षा पर जोर दिया जाने लगा।

- <u>पारिवारिक क्षेत्र</u> :- पारिवारिक जीवन में उन्हें कुछ भी अधिकार प्राप्त नहीं था। परिवार का मुखिया पुरुष होता था। स्त्रियों को परिवार से बाहर जाने का अधिकार नहीं था। बाल-विवाह होता था। स्त्री केवल संतान पैदा करती तथा गृहस्थी के कार्य करती। विधवा होने पर उनकी स्थिति दयनीय हो जाती थी उस स्त्री के भाग्य में काम करना ही लिखा था।

- <u>सामाजिक क्षेत्र</u> :- सामाजिक क्षेत्र में भी स्त्रियों को कोई अधिकार प्राप्त नहीं थे। बाल विवाह तथा पर्दा प्रथा प्रचलित थे। औपचारिक शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार नहीं थी। धार्मिक तथा पारम्परिक

दृष्टि में स्त्रियों का कार्य क्षेत्र घर की चारदीवारी था।

• राजनैतिक क्षेत्र :- राजनैतिक क्षेत्र में 1919 तक स्त्रियों को वोट देने का अधिकार प्राप्त नहीं था। सन 1935 में स्त्रियों को मताधिकार, आयु, शिक्षा, पति की स्थिति, सम्पत्ति आदि के अनुसार दिया गया। किसी भी राजनैतिक कार्य में स्त्रियों को भाग नहीं लेने दिया जाता था। महात्मा गांधी जी ने स्त्रियों को घर के बाहर लाने का प्रयास किया जिसके फलस्वरूप स्त्रियों स्वतंत्रता आंदोलन में भाग लेना प्रारंभ किया।

※ स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद महिलाओं की स्थिति ※

• स्त्री शिक्षा : इस काल में महिलाओं की स्थिति में काफी परिवर्तन आया। इस समय स्त्री शिक्षा का प्रसार हुआ। इस समय स्त्रियां औद्योगिक संस्थानों और विभिन्न क्षेत्रों में नौकरी करने लगी। आर्थिक रूप से आत्म निर्भर होती जा रही थी। वर्तमान में विभिन्न क्षेत्र में परिवर्तन आया।

अब स्त्री को शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार प्राप्त हुआ। अब महिलाएं व्यवसायिक शिक्षा ग्रहण करने लगी। वे कला, विज्ञान, वाणिज्य, गृहविज्ञान, संगीत, शिल्पकला आदि की शिक्षा प्राप्त कर रही हैं।

आर्थिक क्षेत्र में प्रगति :- इस समय महिला कोई ना कोई कार्य करती रही। इस समय स्त्री को कोई भी कार्य को बुरा नहीं समझा जाता था। अब मध्यम वर्ग की स्त्रियाँ उद्योग, दफ्तरों, शिक्षण संस्थाओं, अस्पतालों, समाज कल्याण केन्द्रों एवं व्यापारिक संस्थाओं में काम करने लगी थी।

सामाजिक जागरूकता में वृद्धि :- अब स्त्रियाँ पर्दा प्रथा को बेकार समझने लगी। अब बहुत सी स्त्रियाँ घर मध्यम वर्ग की अब बहुत सी स्त्रियाँ घर की चारदीवारी के बाहर खुली हवाओं में साँस ले रही है। कोई स्त्रियाँ तो समाज कल्याण के कार्य में लगी हुई हैं।

पारिवारिक क्षेत्र में अधिकारों की प्राप्ति :- इस समय स्त्रियों के पारिवारिक अधिकारों में वृद्धि हुई है। अब वर्तमान में स्त्रियाँ संयुक्त परिवार के बंधन से मुक्त होकर एकल परिवार में रहना चाहती हैं। अब विवाह विच्छेद के मामलों में भी स्त्रियों को पुरुषों के समान अधिकार प्राप्त है। आज की बदलती हुई परिस्थितियों में स्त्रियों को दासी बनाकर नहीं रखा जा सकता है।

कहा जा सकता है कि 19वीं और 20 सदी में स्थिति में काफी सुधार हुई। ग्रामीण तथा नगरीय क्षेत्रों में अब अधिकांश स्त्रियाँ सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक जीवन में पूरी तरह भाग नहीं ले रही थी। कारण है स्त्री शिक्षा में अभाव। धीरे धीरे साक्षरता बढ़ी ग्रामीण तथा नगरीय क्षेत्रों में स्त्रियों की स्थिति में सुधार आएगी।

लिंगीय विभेद के कारण

लिंग विभेद से तात्पर्य है :- बालक तथा बालिकाओं के मध्य व्याप्त व्यापक लैंगिक असमानता। बालक तथा बालिकाओं में उनके लिंग के आधार पर भेद करना जिसके कारण बालिकाओं को समाज में शिक्षा तथा पालन पोषण में बालकों से निम्न स्तर स्थिति में रखा जाता है जिससे वे पिछड़ जाती है, लिंग विभेद कहलाता है। लिंग विभेद के निम्नलिखित कारण है _

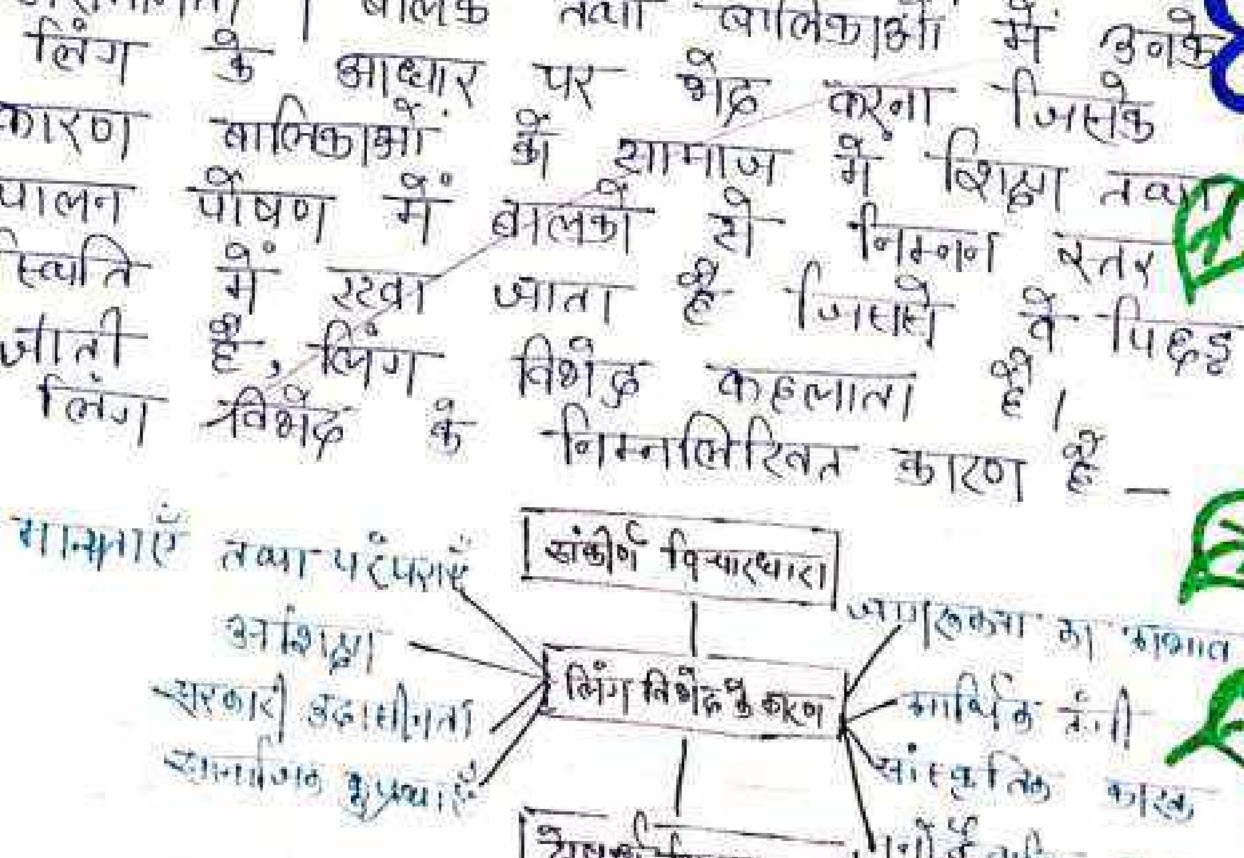

1) मान्यताएँ एवं परंपराएँ : हमारे समाज में लिंगीय विभेद के प्रमुख कारण है भारतीय मान्यताएँ एवं परंपराएँ है। हमारे समाज में कहा जाता है कि पिता के मृत्यु के बाद पुत्र के द्वारा ही पिंडीय कार्य पुत्र के हाथ से सम्पन्न कराने की मान्यता रही है। जिसके कारण ही पुत्र का महत्व दिया गया है। वंश आगे बढ़ाने में पुरुष ही प्रधान है। इसी के परिणामस्वरूप बालिकाओं को गर्भ में ही हत्या कर दी जाती है और अधिकांश बालिकाओं को बोझ समझ कर ही उनका पालन-पोषण किया जाता है। इस प्रकार मान्यताएँ एवं परंपराएँ लिंगीय विभेद में वृद्धि करने का प्रमुख कारण है।

2) संकीर्ण विचारधारा :- हमारे समाज में बालक एवं बालिकाओं में विभेद की प्रमुख कारण है। संकिर्ण विचारधारा है कि बालक ही अपने माता-पिता का बुढ़ापे का सहारा बनेगा और वंश चलायेगा और बालिकाओं के जन्म होने पर दहेज तथा चुल्हा-चौका तक ही सीमित रहता है। इस तरह का विचारधारा हमारे समाज के लिए लिंगीय विभेद का प्रमुख कारण बना हुआ है।

3) मनोवैज्ञानिक कारण :- लिंगीय विभेद में मनोवैज्ञानिक कारणों की भूमिका महत्वपूर्ण है। प्रारंभ में ही स्त्रियों था बालिकाओं के मस्तिष्क में यह बात बैठा दी जाती है कि पुरुष स्त्रियों से श्रेष्ठ है तथा महिलाओं को काफी प्रतीत आज्ञा

का पालन परमेश्वर की भाँति करना चाहिए। अकेली महिला को समाज में हेय की दृष्टि से देखा जाता है। इस प्रकार स्त्रियों में एक मनोविज्ञानिक धारणा बैठ जाती है कि पुरुष उनसे श्रेष्ठ है और वे स्वयं स्त्री होकर भी बालिकाओं के जन्म और उनके मानसिक विकास का विरोध करते हैं।

4. जागरूकता और अभाव :- हमारे समाज में लिंग के विभेद का प्रमुख कारण पालन पोषण में बालक और बालिकाओं में भेद-भाव किया जाता है। यदि जागरूक समाज बालक और बालिकाओं को एक समान मानता तो यह स्थिति नहीं होती। हमारे समाज में बाल विवाहों की अपेक्षा बालक की बालिकाओं की तुलना में उचित प्रबंध नहीं किया जाता है। अतः समाज के लोगों को अपने नजरियों को बदलना होगा। तभी हमारे समाज में लिंगीय विभेद की समाप्ति होगी।

5. अशिक्षा :- लिंगीय विभेद में भी अशिक्षा की महत्वपूर्ण भूमिका है। अशिक्षित व्यक्ति परिवार तथा समाज में चले आ रहे परंपराओं और अंधविश्वासों पर विश्वास करते हैं और बिना सोचे समझे उसी परंपरा को मानते हैं। इसका परिणाम है कि लड़के के तुलना में लड़कियों को शिक्षा में भी हम महत्व नहीं देते लेकिन शिक्षित व्यक्ति यह चिंतन करता है कि स्त्रियाँ शिक्षित नहीं होंगी तो हमारा समाज शिक्षित नहीं होगा।

इसलिए हमारे समाज को स्त्रियों की शिक्षा पर विशेष बल देना चाहिए तभी हम इस असमानता को दूर कर सकते हैं।

⑥ सरकारी उदासीनता :- हमारे समाज में लिंगीय विभेद बढ़ाने में सरकारी उदासीनता भी एक प्रमुख कारण है। सरकारी अस्पतालों में सख्त कारवाई नहीं होती है। जो भ्रूण हत्या को रोका जा सकता है। भ्रूण हत्या को रोका जा सकता है भ्रूण हत्या के कारण हमारे समाज में आज भी हो रही इस पर रोक लगाना चाहिए।

⑦ सामाजिक कुप्रथाएँ :- भारतीय समाज में आज आधुनिकता के रूप में भी तमाम समस्याएँ हैं। जो हमारे समाज में लिंगीय विभेद का प्रमुख कारण बना हुआ है। जैसे - दहेज प्रथा, कन्या भ्रूण हत्या, बाल-विवाह, विधवा विवाह निषेध, छेड़खानी एवं व्यभिचार, डायन विवाह। इस तरह की हमारे समाज में कुप्रथाएँ हैं।

⑧ आर्थिक तंगी :- भारत में आर्थिक तंगी से जूझ रहे परिवारों की संख्या अत्यधिक है। ऐसे में वे बालिकाओं की अपेक्षा बालकों को संतान के रूप में अधिक प्रधानता देते हैं, क्योंकि बालकों को ही परिवार की आर्थिक जिम्मेदार समझा जाता है। और लड़कियों को घर तक ही सीमित रख दिया जाता है। लड़कियों को पराया धन समझ कर माता-पिता प्र

रूप से शिक्षा नहीं दे पाते हैं।

लिंगीय विभेद को दूर करने के लिए संविधान में किया गया सुधार।

संविधान के परिपेक्ष्य में स्त्रियों की बनकी दैनीय स्थिति को देखते हुए हमारे संविधान में निम्नलिखित प्रावधान किए गए हैं –

अनुच्छेद 14 – कानून के समक्ष समानता कानून द्वारा ही की गई है, चाहे वह स्त्री हो या पुरुष।

अनुच्छेद 15(3) – सरकार की तरह से महिलाओं एवं बच्चों को विशेष प्रदान की गई है।

अनुच्छेद 16 : लोक सेवाओं में बिना भेदभाव के अवसर की समानता।

अनुच्छेद 19 : समान रूप से अभिव्यक्ति की संस्वत स्वतंत्रता।

अनुच्छेद 23-24 :- भारतीय संविधान द्वारा नारी क्रय-विक्रय पर रोक

अनुच्छेद 39(घ) : स्त्री-पुरुष दोनों को समान

कार्य के लिए समान वेतन।

अनुच्छेद 243(घ)(ङ) : पंचायती राज एवं नगरीय संस्थाओं में 73वें संशोधन के माध्यम से महिला आरक्षण की व्यवस्था।

अनुच्छेद 42 : महिलाओं के लिए प्रसूति सहायता

अनुच्छेद 47 : पोषाहार जीवन स्तर तथा स्वास्थ्य में सुधार पर दायित्व।

अनुच्छेद 334 : 84वें संशोधन द्वारा राज्यसभा में महिला आरक्षण की व्यवस्था।

महिलाओं की स्थिति को सुधारने के लिए संविधान में दिए गए उपाय की विस्तार से व्याख्या -

स्त्रियों को उनकी दयनीय स्थिति से उबारने के प्रयास ब्रिटिश काल से ही समाजसेवियों सामाज-सुधारकों तथा मिशनरियों द्वारा प्रारंभ कर दिए गये थे जिसके परिणामस्वरूप स्त्रियाँ पर्दे की ओट और घर गृहस्थी के कार्यों से निकली तथा अर्थतंत्र में उन्होंने पुरुषों को अपनी प्रतिभा का लोहा मनवा दिया।

महिलाओं के अधिकारों में कमी मानव सभ्यता के विकास के साथ होती गयी है तथा समय के साथ-साथ उनके प्रति अत्याचारों में वृद्धि होती गयी है। मानव अधिकार के अन्तर्गत सभी व्यक्तियों को बिना किसी भेद के समान अधिकार प्राप्त होते

भारतीय संविधान भारत की महत्वपूर्ण राष्ट्रीय धरोहर है। 26 जनवरी 1950 का दिन भारतीय इतिहास में स्वर्ण अक्षरों में लिखा गया। भारतीय संविधान द्वारा महिलाओं को बहुत ही संवैधानिक एवं विधिक अधिकार प्रदान किए गए हैं।

1) (अनु० - 14) :- भारतीय संविधान के अनुच्छेद 14 के अनुसार " भारत राज्य क्षेत्र में किसी भी नागरिक को विधि के समक्ष समता अथवा विधियों के समान संरक्षण से वंचित नहीं किया जाएगा। समानता से यहाँ अभिप्राय यह है कि सभी स्त्री व पुरुष में किसी भी प्रकार का लिंग भेद नहीं है तथा यह अधिकार समान रूप से दोनों को प्राप्त होगा।

(2) (अनु० - 15) :- भारतीय संविधान के अनुच्छेद 15 के अनुसार " राज्य केवल धर्म, मूल वंश, जाति, लिंग व जन्म स्थान के स्थान आधार पर नागरिकों के मध्य कोई भेद भाव नहीं करेगा ' भारतीय संविधान में यह स्पष्ट है कि पुरुष एवं महिला को सामान अधिकार प्रदान किए गए हैं। साथ ही इस अनु० के खण्ड 3 में स्त्रियों के लिए विशेष व्यवस्था भी कि गयी है।

3) (अनु० - 19) :- अनु० 19 महिलाओं को स्वतंत्रता का अधिकार प्रदान करता है ताकि महिलाए स्वतंत्रतापूर्वक भारत राज्य के क्षेत्र में

आवागमन कर सके। किसी भी कार्य से वंचित करना मौलिक अधिकार का उल्लंघन माना गया है।

④ (अनु. 23-24) :- अनु० 23-24 के अनुसार महिलाओं के विरुद्ध होने वाले शोषण को नारी के सम्मान के विपरीत मानते हुए उनकी खरीद-फरोख्त वेश्या-वृत्ति करना आदि को दंडनीय अपराध की श्रेणी में रखा गया है। इसके लिए सन 1956 में "वीमेन एंड गर्ल्स एक्ट" भी भारतीय संसद द्वारा पारित किया गया ताकि महिलाओं के विरुद्ध होने वाले सभी प्रकार के शोषण को समाप्त किया जा सके।

5) (अनु०-39) :- अनु० 39 के अनुसार स्त्री को जीविका के पर्याप्त साधन प्राप्त करने का अधिकार तथा अनु० 39 (द) के अनुसार समान कार्य के लिए समान वेतन का अधिकार दिया गया।

⑥ (अनु०-42) : अनु० 42 महिलाओं को प्रसूति अवकाश प्रदान करता है।

⑦ (अनु-46) :- अनु० 46 राज्य के दुर्बल वर्गों के लिए शिक्षा तथा अर्थ संबंधि हितों की विशेष सावधानी से अभिवृद्धि करेगा।

(8) (अनु॰ 51) : संविधान के भाग 4 के अनु 51 (क) तथा (ड) में स्पष्ट रूप से वर्णन किया गया है कि हमारा दायित्व है कि हम हमारी संस्कृति कि गौरवशाली परंपरा के महत्व को समझते हुए इस प्रकार कि प्रथाओं का त्याग करें जो महिलाओं के मान सम्मान के खिलाफ हों।

(9) (अनु॰ 243) :- अनु 243 (द) के 3 के अनुसार प्रत्येक पंचायत के प्रत्यक्ष निर्वाचन से भरे गए स्थानों की कुल संख्या के 1/3 स्थान स्त्रियों के लिए आरक्षित रहेंगे।

(10) (अनु - 325) अनु॰ 325 के अनुसार निर्वाचक नामावली में महिला एवं पुरुष दोनों को समान रूप में सम्मलित करने का अधिकार प्रदान किया गया है।

निष्कर्ष :- इस तरह से कहा जा सकता है कि शिक्षा सभ्य समाज का मापक होता है, और प्राचीन काल से ही लिंग को लेकर विभेद किया जा रहा था। लेकिन आधुनिक काल में यह विभेद कम देखने को मिल रहा है। क्योंकि अब समाज के सभी लोग शिक्षित हो रहे हैं तथा जागरूक हो रहे हैं। आज स्त्रियों को [illegible] अधिक रही हैं। [illegible] हर क्षेत्र में [illegible] से कंधा [illegible] चल रही है।